दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० 2498 तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष 27 अंक नं० 11-12

अध्यात्म-पद

(राग जोड़ा)

ज्ञानी जीवन के भय होय, न या परकार ॥टेक॥

इह भव परभव अन्य न मेरो ज्ञानलोक मम सार।
मैं वेदक इक ज्ञानभाव को, नहिं पर वेदनहार ॥ज्ञानी०1॥
निज सुभाव को नाश न तातैं, चहिये नहिं रखवार।
परम-गुप्त निजरूप सहज ही, पर का तहाँ न संचार ॥ज्ञानी०2॥
चितस्वभाव निज प्रान तासको, कोई नहीं हरतार।
मैं चितपिंड अखंड न तातैं, अकस्मात भय सार ॥ज्ञान०3॥
होय निशंक स्वरूप अनुभव, तिनके यह निरधार।
मैं सो मैं, पर सो मैं नाहीं, 'भागचंद्र' भ्रम डार ॥ज्ञान०4॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

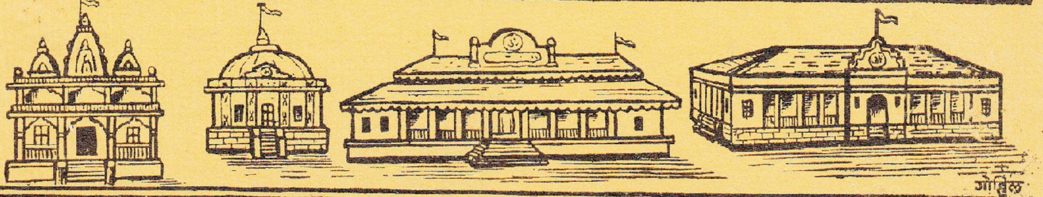

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

अप्रैल : 1972] वार्षिक मूल्य 3) रुपये (323-24) एक अंक 25 पैसा [फाल्गुन-चैत्र : 2498

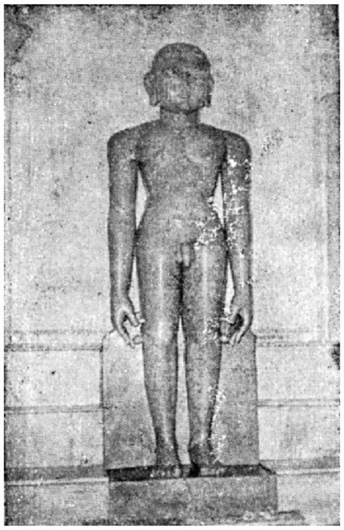

भगवान महावीर

चैत्र शुक्ला त्रयोदशी.... आज के दिन कुंडलपुर में राजा सिद्धार्थ के घर त्रिशला माता की कोख से भगवान महावीर का जन्म हुआ। तीर्थंकर के जन्म का संदेश क्षणभर में सारे विश्व में फैल गया और तीनों लोक के जीवों ने क्षणभर को सुख का अनुभव किया... भगवान के जन्म के प्रभाव से जगत में प्रकाश फैल गया। भगवान आत्मा की दिव्य महिमा का चिंतवन करके अनेक जीवों के अंतर में ज्ञानप्रकाश प्रगट हुआ... धर्म की धारा वृद्धिगत होने लगी... इसलिये उनका नाम भी 'वर्द्धमान' पड़ा। वीर, सन्मति, महावीर, अतिवीर भी उनके नाम हैं।

प्रभु वर्द्धमान आराधक तो थे ही; सिंह के भव से लेकर दस-दस भव तक पुष्ट की हुई आत्मसाधना उन्हें इस भव में पूर्ण करना थी। दर्शन और ज्ञान-आराधना तो जन्म से ही साथ लाये थे, उस आराधना में वृद्धि करते-करते तीस वर्ष की उम्र में संसार से विरक्त होकर चारित्र अंगीकार किया और मोह के बंधन तोड़कर निर्मोही प्रभु बने। आत्मसाधना के काल में अनेक उपसर्ग-परीषह आये, देवों ने भी डिगाने का प्रयत्न किया, परंतु वे वीर थे... स्वरूप की साधना से चलायमान नहीं हुए सो नहीं हुए... साधकभाव की धारा को वर्द्धमान करके उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया और सर्वत्र जिनमहिमा फैल गई। राजगृही में विपुलाचल पर जब उनकी दिव्यध्वनि की सरिता प्रवाहित हुई, तब अनेक जीव उसमें अवगाहन कर आत्मिक वीरता को प्राप्त हुए और वीरमार्ग पर विचरे।—इसप्रकार स्व-पर में धर्मवृद्धि करके वर्द्धमान ने अपना नाम सार्थक किया... जीवन सफल बनाया।

आज भी उन महावीरस्वामी के पदचिह्नों पर चलकर अनेक जीव वीतराग मार्ग पर विचर रहे हैं। हम सब भी उसी मार्ग पर चलकर अपना जीवन सफल करें।

—जय महावीर!

शाश्वत सुख का मार्गदर्शक मासिकपत्र

आत्मधर्म

संपादक : ब्र० हरिलाल जैन 卐 सह-संपादक : ब्र० गुलाबचंद जैन

अप्रैल : 1972 ☆ फाल्गुन-चैत्र : वीर नि० सं० 2498, वर्ष 27 वाँ ☆ अंक : 11-12

आत्म-साधना

हे धर्मबन्धु ! यह आत्मा को साधने का अवसर है।

इस समय तू दुनिया की खटपट में रुककर अपनी आत्म-साधना के लक्ष को मत चूकना।

आत्मतत्त्व अति महान है; ऐसे महान आत्मतत्त्व को लक्षगत करना, वही महापुरुष की सेवा है।

अपने चैतन्य की महानता को लक्ष में लेगा तो सांसारिक घटनाएँ तुझे आकुलित नहीं कर सकेंगी। अरे, चैतन्य की ऐसी महानता को भूलकर जगत के छोटे-मोटे प्रसंगों में उलझ जाना मुमुक्षु को शोभा नहीं देता।

जहाँ आत्मसाधना का महान प्रयोजन है, वहाँ सांसारिक मान या अपमान, निंदा या प्रशंसा, अनुकूलता या प्रतिकूलता—इन किसी की कोई गिनती नहीं है। आनंदमय आत्मा की साधना में जगत की ओर क्या देखना ? मुमुक्षु को अपनी आत्म-साधना का ऐसा प्रेम, ऐसा उल्लास, ऐसी शांति और ऐसी तल्लीनता है कि उनके अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में रुकना उसे अच्छा नहीं लगता।

वीतराग संत अपूर्व भेदज्ञान कराते हैं, वह भेदज्ञान करके आत्मा आनंदित होता है

[फाल्गुन कृष्णा 12, सोनगढ़ : समयसार गाथा 22 से 25]

(विहार के एक दिन पूर्व पूज्य स्वामीजी द्वारा दिया गया प्रवचन पढ़कर आपको आनंद होगा)

जीव का स्वरूप पुद्गल से भिन्न चेतनारूप है; ऐसा स्वरूप बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! तू तो चैतन्यस्वरूप है, तू कहीं पुद्गलस्वरूप नहीं है। अंतर में विचार करके देख तो तुझे अपनी चेतनता का और जड़-पुद्गल से अत्यंत भिन्नता का अनुभव होगा।

अरे, कहाँ तू चैतन्य भगवान और कहाँ वे अचेतन-जड़? दोनों को सर्वथा भिन्नता है। सर्वज्ञ भगवान ने चेतनमय जीव देखा है, पुद्गल तो जड़रूप है। चेतनतत्त्व पुद्गलरूप कैसे होगा? राग भी चेतनता रहित है। चेतनतत्त्व कभी चेतनता छोड़कर रागमय या शरीरमय नहीं होता और शरीर या राग कभी चेतनरूप नहीं होते; दोनों में बिल्कुल भिन्नता है। जिसप्रकार प्रवाहीपन और खारापन तो पानी में एकसाथ रह सकते हैं, उसमें विरोध नहीं है; उसीप्रकार कहीं जीव में चेतनता और अचेतनता को अविरोधपना नहीं है; जीव में जिसप्रकार चेतनपना तन्मयरूप से सदा विद्यमान है, उसीप्रकार कहीं रागादिपना जीव के साथ तन्मय नहीं वर्तता, वह तो भिन्न वर्तता है। सर्वज्ञदेव का कहा हुआ ऐसा भेदज्ञान करके हे जीव! तू प्रसन्न हो... आनंदित हो!

अहा, मेरा चैतन्यतत्त्व तो इतना सरस, रागरहित शोभायमान है, वह मेरे गुरु के प्रताप से मुझे अनुभव में आया।—इसप्रकार स्वतत्त्व को देखकर हे जीव! तू आनंदित हो! जहाँ आनंदमय तत्त्व स्वयं अपने अनुभव में आया, वहाँ अब संदेह कैसा? खेद कैसा?—संदेह और खेद छोड़कर ऐसे स्वतत्त्व को आनंदसहित अनुभव में ले। अनादिकाल से भूलकर भव में भटका, तथापि मेरा तत्त्व बिगड़ नहीं गया है, चेतनता को छोड़कर जड़रूप-रागरूप नहीं हुआ है; चारों ओर से, सर्व परभावों से मेरा तत्त्व पृथक् का पृथक् चैतन्यमय है।—ऐसा अंतर में

देखते ही अपने को परम अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। ऐसा स्वाद लेकर हे जीव! तू प्रसन्न हो... उज्ज्वल हो... और ऐसे उपयोगस्वरूप आत्मा को अनुभव में ले।

अहा! सर्वप्रकार से तू प्रसन्न हो... किसी प्रकार दुःखी न हो! अरे, चैतन्य में कहीं दुःख होगा? संतुष्ट होकर तू आनंदमय चैतन्यतत्त्व को देख! वर्तमान में भी तू ज्यों का त्यों है। अंतर में देखते ही तुझे महा आनंद होगा। ऐसे तत्त्व को देखकर धर्मी कहता है कि अब परभाव में मैं नहीं जाऊँगा... नहीं जाऊँगा। चेतनरूप ही मैं हूँ—ऐसी श्रद्धा के सिंहनाद से धर्मी कहता है कि अब हमारे भव कैसे और दुःख कैसा? जिसप्रकार सूर्य के प्रकाश में अंधकार नहीं है, उसीप्रकार मेरे चैतन्यसूर्य के प्रकाश में रागादि परभावों का अंधेरा नहीं है—नहीं है—नहीं है।

अहा! चैतन्य की ऐसी बात सुनकर कौन प्रसन्न नहीं होगा! ऐसे अपने चैतन्य को लक्ष में लेकर तू प्रसन्न हो जा! जहाँ आत्मा का लक्ष हुआ, वहाँ धर्मी परम आनंद के वेदन सहित निःशंक हो जाता है कि बस, सर्वज्ञदेव द्वारा देखे गये आत्मा का अनुभव हमने भी कर लिया है... जैसा सर्वज्ञ भगवान ने देखा है, वैसे ही अपने चैतन्यस्वरूप आत्मा का हम अनुभव कर रहे हैं।

अहा! प्रमोद सहित एकाग्रतापूर्वक अपने चैतन्य की बात तू सुन तो सही! आत्मा का ऐसा सरसस्वरूप सुनकर अंतर में असंख्यप्रदेश प्रमोद से उल्लसित हो जाते हैं... मुमुक्षु जीव अपने तत्त्व को देखकर महा प्रसन्न होता है। अपनी वस्तु अति गंभीर एवं अत्यंत महान है, परंतु वह ऐसी नहीं है कि उसमें ज्ञान द्वारा प्रविष्ट न हुआ जा सके! ज्ञान की उज्ज्वलता द्वारा अंतर में ऐसे चैतन्यतत्त्व का अनुभव किया जा सकता है। आत्मा अपने चैतन्यलक्षण को कभी बदलता नहीं है। लाख प्रतिकूलताओं के बीच भी ज्ञानी अपने चैतन्यलक्षण को नहीं छोड़ते अथवा चैतन्यलक्षणरूप जो स्वतत्त्व है, उसका कभी लक्ष नहीं छोड़ते। अहा, ऐसे चैतन्यलक्षणवान स्वतत्त्व को तू आनंद से अनुभव में ले।

—इसप्रकार श्रीगुरु ने अत्यंत करुणा से भेदज्ञान कराया, तदनुसार ज्ञान की उज्ज्वलता करके शिष्य परम प्रसन्न हुआ है, आनंदित हुआ है। चैतन्यतत्त्व ही ऐसा है कि जिसे लक्ष में लेकर अनुभव करने से महा आनंद होता है।

धन्य है गुरु को! जिन्होंने परम अनुग्रह से भेदज्ञान कराके शिष्य को स्वतत्त्व में सावधान करके आनंदित किया है।●

जिसकी प्रतीति होते ही आनंद का सागर उल्लसित हो —ऐसे स्वतत्त्व की महिमा लाकर श्रवण करो!

फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी के दिन सोनगढ़ से मंगल प्रस्थान करके पूज्य स्वामीजी लाठी नगर में पधारे। अब से 23 वर्ष पूर्व (संवत् 2005 में) लाठी नगर में श्री दिगम्बर जिनमंदिर का पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव हुआ था; उस समय लाठी के मुमुक्षुओं का उल्लास आश्चर्यजनक था। कषायप्राभृत-जयधवल महा सिद्धांत का प्रथम भाग राजकोट में गुरुदेव के हाथों में आया, तब उन्हें उसके प्रति अतिशय बहुमान आया था; उन दिनों तो जयधवल-परमागम देखने को मिले, उसे भी लोग अपना सद्भाग्य मानते थे। ऐसे जयधवल परमागम की महान भक्तिभरी रथयात्रा सर्वप्रथम इस लाठी नगर में (संवत् 2000 में) निकली थी।—ऐसे लाठी नगर के जिनमंदिर में सीमंधर भगवान के दर्शन करके मंगलाचरण में आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का स्मरण करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहा कि—'आत्मा अंतर में ज्ञान-दर्शनस्वरूप से विराजमान है; ऐसे आत्मा को पहिचानना, उसका स्मरण करना वह मंगल है।' प्रवचन में श्री समयसार की चौथी गाथा द्वारा आत्मस्वरूप की दुर्लभता बतलाते हुए चैतन्यस्वरूप की परम महिमा समझायी थी।

इस समयसार में शरीर से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्व बतलाया है। जीव ने अपना यथार्थ स्वरूप अनंतकाल से नहीं जाना था, इसलिये उस एकत्वस्वरूप की दुर्लभता है। जगत में यह जीव सर्व वस्तुएँ प्राप्त कर चुका परंतु अपने चैतन्यतत्त्व का स्वयं कभी अनुभव नहीं किया, इसलिये वह दुर्लभ है। दुर्लभ है—यह सच है, तथापि उसे न जाना जा सके, ऐसा नहीं है। उसे जाना जा सकता है और उसकी पहिचान करने से वह सुलभ होता है। ज्ञानियों को

आत्मा सुलभ है; अज्ञानियों को जगत के विषय सुलभ लगते हैं और अतीन्द्रिय आत्मा दुर्लभ लगता है। ऐसे एकत्वस्वरूप को जो जानना चाहता है, उसे उसका स्वरूप इस समयसार में आचार्यदेव ने बतलाया है।

आत्मा का शुद्ध स्वरूप दुर्लभ है—ऐसा कहा, उसका यह अर्थ नहीं है कि वह प्राप्त नहीं हो सकता; परंतु दुर्लभ है, इसलिये तू अपूर्व भाव से उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ करना। दुर्लभ वस्तु का अचिंत्य मूल्य समझकर उसकी प्राप्ति का पुरुषार्थ करने से वह सुलभ हो जायेगी। पूर्वकाल में तूने सच्चे भाव से आत्मा का स्वरूप नहीं सुना है; सुना तब रुचि नहीं की; इसलिये अब ज्ञानी के निकट ऐसे अपूर्वभाव से सुनना कि तुझे अपनी वस्तु सुलभ हो जाये। अरे, अपनी वस्तु कहीं अपने को दुर्लभ होती है ? दुर्लभता, वह व्यवहार है, और सुलभता, वह निश्चय है।

पूर्वकाल में अनंतबार आत्मा की बात तो सुनी है, तथापि नहीं सुनी—ऐसा क्यों कहते हो ?—तो कहते हैं कि चैतन्यवस्तु जैसी महान है, वैसी लक्ष में नहीं ली; उसका प्रेम नहीं किया; इसलिये श्रवण का फल उसे नहीं आया; इसलिये उसने आत्मा की बात सुनी ही नहीं है। वास्तव में सुना उसे कहा जाता है कि जैसी चैतन्यवस्तु है, वैसी अनुभव में आ जाये।

उसीप्रकार निगोद में अनंत जीव ऐसे हैं कि जिन्हें अभी तक कर्णेन्द्रिय ही प्राप्त नहीं हुई है, तथापि यहाँ कहते हैं कि उनने भी अनंतबार काम-भोग-बंध की ही कथा सुनी है।—नहीं सुनी, फिर भी सुनी क्यों कहते हो ? क्योंकि उस विकथा के श्रवण का फल जो राग का अनुभव—वह उनके वर्तता है। शब्द भले ही नहीं सुने, परंतु सुने बिना अकेले शुभाशुभराग के अनुभवरूपी संसार की चक्की में वे पिस रहे हैं, इसलिये वे पुण्य-पाप की विकथा ही सुन रहे हैं, ऐसा कहा है। उपादान में जैसा वेदन है, वैसा ही श्रवण कहा है। जो चैतन्य के एकत्व का अनुभव नहीं करता, उसने चैतन्य की बात सुनी ही नहीं है; जो राग का एकत्वरूप से अनुभव करता है, वह राग की कथा ही सुन रहा है।—भले ही भगवान के समवसरण में बैठा हो! भावश्रवण उसे कहा जाता है कि जैसा श्रवण किया, वैसे तत्त्व को अनुभव में ले। भाई, तेरे अनुभव में आ सके, ऐसा तेरा तत्त्व है और उसी तत्त्व का स्वयं अनुभव करके बतला रहे हैं। अरे, तू स्वयं चैतन्यनाथ सुख का भंडार! और अपने सुख की भीख तू किसी दूसरे के पास माँगे, यह तुझे शोभा देता है ? अनंतकाल से तूने जिसका श्रवण नहीं किया, अनुभव नहीं किया,

ऐसा अचिंत्य तत्त्व ज्ञानी संत तुझे वर्तमान में सुना रहे हैं; उसे सुनकर, समझकर उसकी परम महिमा लाकर अनुभव करने का यह अवसर आया है।—ऐसा अवसर तू चूकना नहीं।

अरे, आत्मा का ऐसा स्वरूप सुनने के लिये भी जिसे निवृत्ति न मिले, उसकी जिज्ञासा भी जागृत न हो, उसे तो आत्मा का मूल्य ही कहाँ है। इन्द्र स्वर्ग को भी तुच्छ समझकर जिस तत्त्व का श्रवण करने इस मनुष्य-लोक में आते हैं, उस चैतन्यतत्त्व की महिमा का क्या कहना! अरे, ऐसे चैतन्यतत्त्व के अनुभव से रहित अकेले शुभाशुभभाव, वह तो भार है। जिसप्रकार बैल भार को खींचते हैं; उसीप्रकार अज्ञानी शुभाशुभ कषायचक्र में वर्तता हुआ दुःख के भार को खींचता है; चैतन्य के अतीन्द्रिय सुख को भूलकर इन्द्रिय-विषयों की तृष्णा से आकुल-व्याकुल होता है। उससे छूटने के लिये आत्मा का पर से भिन्न एकत्वस्वरूप यहाँ समझाया है; ऐसा स्वरूप समझे तो कषाय के भार से छूटकर जीव हलका हो जाये और उसे अपने एकत्व चिदानंदस्वरूप के अनुभव से परम आनंद का स्वाद आये।

***

आत्मा के स्वभाव को पर से भिन्न जाने तो अंतर का चैतन्य-पाताल फूटकर शांति-आनंद प्रगट हो। जिसे ऐसे आत्मा की खबर नहीं है और परविषय में सुख मानता है, उसे तो मोहरूपी बड़ा भूत लगा है और इसलिये उसे विषयों की तृष्णा फूट निकली है। भीतर चैतन्य को स्वविषय बनाकर उसमें झुकने से आनंद का समुद्र उमड़ता है और पर में सुख मानकर परविषयों की ओर झुकने से तृष्णा की खाई निकलती है।

अरे जीव! जिसे जानते ही आनंद का सागर उल्लसित होता है, ऐसे अपने स्वतत्त्व की महिमा तू सुन तो सही! अनंतकाल से समझे बिना आत्मा का अहित किया है, तो अब इस भव में तो मुझे आत्मा का हित कर लेना है। अनंत भवों से बिगड़ी हुई बाजी अब इस भव में सत्समागम से सुधार लेना है।—इसप्रकार अंतर में आत्महित की अभिलाषा जागृत होना चाहिये। ऐसे सत्संग का योग पाकर मुमुक्षु को भव बिगड़ने की चिंता नहीं होती, अब तो भव का अंत करने की बात है। ऐसा अपूर्व धर्म प्राप्त हुआ तो अब मेरे भव का अंत आ गया,—इसप्रकार धर्मी के अंतर से भव के अंत की ध्वनि उठती है। अरे, वर्तमान में तो मुझे अनंत भव के दुःखों से छूटकर मोक्षसुख साधने का अवसर मिला है। अब इन संसार के दुःखों

से बस होओ !... बस होओ ! यह तो आत्मस्वभाव के परम सुख का स्वाद लेने का अवसर है ! अहा, मेरा चैतन्यतत्त्व जो मेरे अंतर में स्पष्टरूप से सदा प्रकाशमान है—ऐसे निर्दोष चैतन्यतत्त्व पर इस परभावरूपी कषायचक्र का लेप शोभा नहीं देता। शास्त्र में (नयचक्र में) कहा है कि—व्यवहार तो निश्चय के ऊपर का लेप है। जिसप्रकार लेप से मूलवस्तु ढँक जाती है, उसीप्रकार आत्मा का जो निश्चय शुद्धस्वरूप है, वह परभावरूपी व्यवहार के लेप द्वारा ढँक जाता है; अज्ञानी को रागादि व्यवहारभाववाला ही आत्मा दिखायी देता है—शुद्ध आत्मा उसे दिखायी नहीं देता—अनुभव में नहीं आता। स्वयं को उसका अनुभव नहीं है और अनुभवी ज्ञानियों से सुनने का अवसर मिला, तब उसकी प्रीति भी नहीं करता।

अरे, मेरा यह चैतन्यतत्त्व एकत्वस्वभाव में शोभायमान होता है, उस पर कषायचक्र का लेप कैसा ? शुभाशुभभावरूपी कषायचक्र के साथ चैतन्य का संबंध कैसा ? चैतन्य के शांत-निराकुल स्वभाव की कषायों के साथ एकता नहीं है, भिन्नता ही है। ऐसी भिन्नता ज्ञानी बतलाते हैं। उसे सुनकर, उसका प्रेम करके, बारंबार उसका परिचय करके वह अनुभव में लेने जैसा है;—यही कल्याण की रीति है। भाई, ऐसे तत्त्व का प्रेम करेगा तो तेरी बिगड़ी हुई बाजी सुधर जायेगी, तेरा भव सुधर जायेगा और आत्मा का परमसुख तुझे अपने में दिखाई देगा। ऐसा भेदज्ञान तुझसे हो सकता है, वही ज्ञानी तुझे समझाते हैं। आत्मा स्वयं अपने को प्रत्यक्ष दिखायी दे ऐसा है। अंतरंग प्रीति से अभ्यास करने पर दुर्लभ तत्त्व भी सुलभ हो जाता है। बाह्य विषयों की मिठास थी, तब राग से भिन्न चैतन्यतत्त्व दुर्लभ था, अब राग से भिन्न चैतन्य के अभ्यासरूप भेदज्ञान द्वारा आनंदमय आत्मतत्त्व सुलभ हुआ है; ज्ञानी को वह स्वानुभवगम्य हुआ है, इसलिये वह सुलभ है। ज्ञानी के निकट श्रवण करके अंतर में प्रयोग करने से 'प्राप्त की प्राप्ति' होती है; स्वभाव में था, वह पर्याय में प्रगट होता है। पूर्व अज्ञानदशा में दुर्लभ था, परंतु अब 'समयसार' के श्रवण से हमारा एकत्व हमें सुलभ हो गया... यह आत्मज्ञ संतों का प्रताप है। अपने एकत्वस्वभाव की ऐसी प्रतीति की, वही आत्मज्ञ संतों की सच्ची उपासना है।

आत्मा का शुद्धस्वरूप पहले कभी जाना नहीं है—अनुभव नहीं किया है—प्रेम से सुना भी नहीं है; उस शुद्धस्वरूप को जानने की अब जिसे रुचि जागृत हुई है, ऐसे शिष्य को यहाँ समयसार में आत्मा के समस्त निजवैभव से आचार्यदेव शुद्धात्मा बतलाते हैं। जिसे शुद्धात्मा की रुचि—उत्कंठा हुई है, ऐसे शिष्य को समझाते हैं।

कैसा है आत्मा का शुद्धस्वभाव ? वह चैतन्यभावरूप सदा प्रकाशमान ज्ञायकभाव, शुभाशुभ कषायचक्ररूप परिणमित नहीं होता। चैतन्यभाव कभी रागरूप नहीं हुआ है; ऐसे आत्मा का अनुभव करने से शुद्धात्मा का स्वाद आता है। ऐसे आत्मा को जाने बिना इस संसार के फेरे नहीं मिटते। भाई! इन संसार दु:खों में अवतार लेना, वह कलंक की बात है। आनंदस्वरूप आत्मा को यह संसार के दु:ख शोभा नहीं देते। इनसे छूटना चाहता हो तो अपने ऐसे शुद्धस्वरूप को जान।

अपने ज्ञान को अंतरोन्मुख करने से तुझे अपना संपूर्ण आत्मा प्रत्यक्ष होगा, महा आनंद सहित तेरा आत्मा तुझे प्राप्त होगा अर्थात् अनुभव में आयेगा। ऐसा अंतर्मुखज्ञान सीधा आत्मा को स्पर्श करता है, उस ज्ञान में इन्द्रियों की-मन की-राग की अपेक्षा नहीं रहती; सबसे पृथक् हुआ ज्ञान आत्मा के स्वभाव में तन्मय वर्तता है। ऐसे ज्ञान में अतीन्द्रिय सुख का स्वाद आता है। मैं तो शरीररहित, रागरहित, शुद्ध-बुद्ध-चैतन्यघन हूँ; अपने स्वरूप को जानने के लिये मैं ही स्वयंज्योति—प्रकाशमान हूँ, किसी अन्य की सहायता उसमें नहीं है। स्वयं प्रकाशमानरूप से अपना स्वरूप मुझे प्रत्यक्ष है।—ऐसा जो जानता है—अनुभवता है, वह जीव धर्मी है।

चैतन्यतत्त्व जितना महान है, उतना जिसके लक्ष में आये, उसी के विकल्प टूटेंगे अर्थात् विकल्प और ज्ञान की भिन्नता होकर उसके अतीन्द्रिय ज्ञानप्रकाश की किरणें फूटेंगी और आनंद का सुप्रभात हो जायेगा। वस्तु जैसी और जितनी है, उसकी अचिंत्य महिमा लक्षगत हुए बिना सच्चा ध्यान नहीं होता और विकल्प नहीं छूटते। ज्ञानतत्त्व स्वयं विकल्परहित है, उस तत्त्व का अनुभव करते ही विकल्प रहित चैतन्य का वेदन होता है, उसकी श्रद्धा होती है, उसका ज्ञान होता है, उसका आनंद होता है;—इसप्रकार अनंत गुणों का निर्दोष कार्य आत्मा में एकसाथ प्रगट होता है—उसका नाम धर्मदशा है।

चैतन्यराजा की सेवा करो!

तुम स्वयं चैतन्यराजा हो, चैतन्यराजा राग की सेवा करे, वह उसे शोभा नहीं देता।

[सोनगढ़ में फाल्गुन कृष्णा 3 के दिन जामनगर निवासी श्री छबलबेन फूलचंद तंबोली के नवनिर्मित भवन में वास्तु-प्रवेश के अवसर पर श्री समयसार गाथा 17-18 पर पूज्य स्वामीजी का प्रवचन।]

हे भाई! अनंत गुणों के वैभव का जिसमें निवास है, ऐसी चैतन्यवस्तु तू स्वयं है। अरे चैतन्यराजा! तूने अपने अचिंत्य वैभव को कभी जाना नहीं, अपने स्वगृह में कभी प्रवेश नहीं किया, स्वगृह को भूलकर तूने राग को अपना गृह मानकर उसी में रहा है; परंतु श्रीगुरु तुझे निजगृह में प्रवेश कराते हैं कि हे जीव! तू अपने आत्मा को चैतन्यस्वरूप जानकर उसकी सेवा कर, जिससे तेरा कल्याण होगा। अहा, अपने गृह में प्रवेश करने की किसे उमंग न होगी?

वीतरागदेव के मार्ग में ऐसा उपदेश है कि हे मोक्षार्थी जीवो! यदि तुम्हें जन्म-मरण के दुःख से मुक्त होना हो और आत्मा के परमसुख का अनुभव करना हो तो जगत में महान ऐसा तुम्हारा चैतन्यतत्त्व है—वह ज्ञान की अनुभूतिस्वरूप है—उसे लक्ष में लेकर ज्ञान-श्रद्धा-एकाग्रता द्वारा उसकी सेवा करो। अर्थात् तुम्हारा आत्मा चैतन्यराजा है, उसकी सेवा करो। उसकी सेवा कैसे होती है? राग से भिन्न ऐसी जो चैतन्य-अनुभूति है, उस अनुभूतिस्वरूप मैं हूँ—ऐसा जानना, निःशंक श्रद्धा करना तथा उसमें स्थित होना ही आत्मा की सेवा है और उसके सेवन से मोक्ष होता है। अन्य किसी भी प्रकार मोक्ष नहीं होता।

भाई, ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा बिना-उसे जाने बिना तू संसार में अनादि काल से दुःखी हुआ है। आत्मा ज्ञानस्वरूप तो है ही, लेकिन 'मैं ज्ञानस्वरूप हूँ'—ऐसी अनुभूति जब तक न करे, तब तक ज्ञान का स्वाद नहीं आता अर्थात् ज्ञान की सेवा नहीं होती। अरे, जो ज्ञान

की सेवा करते हैं, उनकी दशा तो राग से भिन्न हो जाती है और अलौकिक आनंद के वेदनसहित उनहें मोक्षमार्ग प्रगट होता है।

देखो, आत्मा की सेवा की रीति बतलाने के लिये उदाहरण भी 'राजा' का दिया है। राजा अर्थात् श्रेष्ठ! मोक्षार्थी के लिये यह चैतन्यस्वरूप ज्ञायक राजा ही सर्वश्रेष्ठ है, वही सेवा तथा आराधना करने योग्य है। आत्म-राजा तो चैतन्यभाव में तन्मय है, वह कहीं रागादि में तन्मय नहीं है, इसलिये आत्मा की सेवा करनेवाला कभी राग की सेवा नहीं करता; राग से पृथक् होकर ज्ञान में तन्मय होकर जो ज्ञानभावरूप परिणमित हुआ, उसी ने चैतन्यराजा की सेवा की है तथा ज्ञान का सेवन किया है।

जिनभगवान ने ऐसे ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्थिर रहने का उपदेश दिया है। ज्ञान में निवास करना ही सच्चा गृह-निवास है। रागरूपी परघर में अनादि काल से तू निवास कर रहा है, इसलिये राग से पृथक् होकर तूने ज्ञान का एक क्षणमात्र भी सेवन नहीं किया, यदि एक क्षण भी राग से पृथक् होकर ज्ञान का सेवन करे तो मोक्ष का मार्ग खुल जाये। इसलिये हे मोक्षार्थी जीवो! तुम स्वसन्मुख होकर ज्ञान द्वारा इस चैतन्यराजा की सेवा करो, उसे जानकर उसकी श्रद्धा करो और उसी में विश्राम करो।

अरे, जो राग का सेवन करे, उसे मोक्षार्थी कैसे कहा जाये? जो राग का अर्थी है, वह मोक्ष का अर्थी नहीं है; जो मोक्ष का अर्थी है, वह राग का अर्थी नहीं है। ज्ञान-आनंद का धाम आत्मा स्वयं है, तथापि जहाँ तक वह स्वयं अपने को ज्ञानरूप अनुभव नहीं करता, वहाँ तक ज्ञान की सेवा नहीं होती, और ज्ञान की सेवा के बिना मोक्ष की सिद्धि नहीं होती। इसलिये जैनधर्म में भगवान ने मोक्षार्थी जीवों को ज्ञान की सेवा करने का उपदेश दिया है।

यद्यपि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है ही, तथापि अज्ञानी जन ज्ञान का एक क्षण भी अनुभव नहीं करते और राग की ही सेवा किया करते हैं। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ—ऐसी स्वयं पहिचान करे—अनुभव करे तो राग से भिन्न ज्ञानदशारूप परिणमित हो और तभी ज्ञान की सेवा की, ऐसा कहा जाये। 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव द्वारा आत्मराजा की सेवा करने से आत्मा अवश्य ही सिद्धि को प्राप्त होता है और ऐसे आत्मराजा की सेवा बिना अन्य किसी उपाय द्वारा आत्मा सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

हे भाई! जिसमें अनंत गुणों का निवास है, ऐसी चैतन्य वस्तु तू स्वयं है। अरे

चैतन्यराजा! तूने अपने अचिंत्य वैभव को कभी पहचाना नहीं। अपने स्वगृह में कभी प्रवेश नहीं किया, स्वगृह को भूलकर राग को अपना घर मानकर उसी में तूने निवास किया है; परंतु अब श्रीगुरु तुझे स्वगृह में प्रवेश कराते हैं कि हे जीव! तू अपने आत्मा को चैतन्यस्वरूप जानकर उसकी सेवा कर, जिससे तेरा कल्याण होगा।

श्रीगुरु ने जैसा कहा, वैसा शिष्य ने किया, तब उसने अपने गृह में प्रवेश किया है। अरे, अपने गृह में प्रवेश करने का किसे उत्साह न होगा? गाय-बैल जैसे पशु भी जब खेतों में काम करके वापिस अपने घर की ओर लौटते हैं तो उमंग से दौड़ते-दौड़ते आते हैं। बैल जब खेत में काम करने को जाता है, तब वह धीरे-धीरे जाता है लेकिन जब खेत से काम करके वापिस घर पूरी रात आराम करने और घास चरने को आता है तो वह दौड़ता-दौड़ता आता है। अरे! बैल जैसे पशु को भी छुटकारे का कैसा उत्साह आता है, तो हे जीव! तुझे वीतरागी संत छुटकारे का मार्ग बतलाते हैं—अनादिकाल से जीव संसार में परिभ्रमण करते हुए थक गया है, उसे श्रीगुरु शांति का धाम ऐसा स्वगृह बतलाते हैं, जिस स्वगृह में रहकर सादि-अनंतकाल आनंद का अनुभव करता है, उस स्वगृह में आने की किसे उमंग न होगी? तू अपने आत्मा का परम उल्लास लाकर अपने गृह में आ! अनादि के दुःखों से छूटने का ऐसा सुंदर मार्ग! उसे सुनकर मुमुक्षु जीव परम उल्लासपूर्वक आत्मा को साधते हैं। इसका नाम ज्ञान की सेवा है, यही मोक्षमार्ग है।

इसप्रकार ज्ञानस्वरूप आत्मा का जानकर उसकी सेवा करे, तब जीव के अज्ञान का व्यय होता है, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति होती और ज्ञानस्वरूप से स्वयं ध्रुव रहता है। ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रुवस्वरूप आत्मा है। आत्मा का ऐसा स्वरूप वीतराग-मार्ग में ही है।

वीतराग के मार्ग में ज्ञानी-संतों का उपदेश यही है कि हे जीव! ज्ञानस्वरूप अपने आत्मा को पहिचानकर उसकी अनुभूति कर। तू चैतन्यराजा और राग से अपने मोक्ष की भीख माँगे—यह तुझे शोभा नहीं देता। चैतन्यराजा राग की सेवा करे—यह उसे शोभा देगा? नहीं, यह तो मोह भजन है। चैतन्य राजा की सेवा रागरहित है। ज्ञान द्वारा चैतन्यराजा की सेवा करने से वह महान आनंद प्रदान करता है। शांति के, सुख के अपार निधान दे, ऐसा चैतन्यराजा है। उसके ज्ञान-श्रद्धा-एकाग्रता द्वारा अपूर्व मोक्षमार्ग प्रगट होता है। इसलिये हे मोक्षार्थी जीवो! तुम सतत ऐसे ज्ञानस्वरूप अपने को अनुभव करो... आनंद का धाम तुम स्वयं हो, उसे पहिचानकर उसमें निवास करो, यह मंगल वास्तु-प्रवेश है।●●

ज्ञानी की चैतन्य-परिणति विकल्पों का स्पर्श नहीं करती

[श्री नियमसार के प्रवचन से]

❀ विकल्पों की उत्पत्ति राग की भूमिका में होती है, चैतन्य की भूमिका में तो निर्विकल्प आनंद की उत्पत्ति है, उसमें विकल्प की उत्पत्ति नहीं है।

❀ अंतर के भगवान से भेंट चैतन्य-अनुभूति के द्वारा ही होती है।

❀ विकल्प है, वह चैतन्यरस नहीं है। चैतन्य का रस, चैतन्य का भाव तो मात्र समरसस्वभावरूप है, परम शांत अनुभूतिरूप है।

❀ जहाँ ऐसे चैतन्यभावरूप आत्मा जागृत हुआ और 'मैं चिन्मात्र शांति का सागर हूँ'— ऐसी अनुभूतिरूप हुआ, वहाँ उसी क्षण विकल्पों का इन्द्रजाल अदृश्य हो जाता है।

❀ अरे, विकल्प तो भवभय करनेवाले हैं, वे कहीं शांति देनेवाले नहीं हैं। बाह्य का विकल्प हो या अंतर का हो—उसमें भय है, अशांति है।

❀ चैतन्य की अनुभूति तो परम आनंद की जननी है, उसमें कोई भय नहीं।

❀ चैतन्य की अनुभूति ही आत्मा का अभ्यंतर अंग है। विकल्प तो बाह्य है, वे कहीं चैतन्य का अंग नहीं है। अहो, ऐसी अंतरंग अनुभूति द्वारा आत्मा स्वयं अपने अंतर में किसी अद्‌भुत परम तत्त्व को देखता है। जिसके देखने से महा आनंद हो, ऐसा अंतरंग तत्त्व आत्मा स्वयं है। जिसके ऊपर ज्ञान का लक्ष जाते ही विकल्प दूर हो जाते हैं—ऐसा निजतत्त्व, यह चैतन्यस्वरूप आत्मा है।

❀ विकल्प, विकल्प में वर्तता है; ज्ञान, ज्ञान में वर्तता है। विकल्प में ज्ञान नहीं वर्तता, ज्ञान में विकल्प नहीं।—ऐसी दोनों की भिन्नता जाननेवाला ज्ञानी, ज्ञान में वर्तता है; ज्ञानी की ज्ञानपरिणति आत्मा में तन्मयरूप वर्तती है, वह विकल्प से दूर ही रहती है। विकल्प के समय भी ज्ञानी का ज्ञान तो ज्ञानभावरूप ही वर्तता है, विकल्पभावरूप नहीं वर्तता। ऐसी अद्‌भुत ज्ञानपरिणति अपने में आनंद के सागर चैतन्यभगवान को धारण करती है; विकल्प को धारण नहीं करती; उन्हें तो वह अपने में प्रवेश भी नहीं करने देती। अहा, परिणति चैतन्यतत्त्व में प्रविष्ट होकर विकल्पों से पृथक् हो गई, वह अब विकल्पों का स्पर्श नहीं करती।—ऐसी परिणति हो, तब ज्ञानी कहा जाता है।●●

प्रतिपादन करना है परमार्थ का।
तू परमार्थतत्त्व को अनुभव में लेना,
बीच में भेद के विकल्प आयें उनसे ज्ञान को ऊपर रखना

श्री समयसार की ग्यारहवीं गाथा प्रारंभ करते हुए गुरुदेव कहते हैं कि—जैन-सिद्धांत का प्राण कहो, मोक्षमार्ग का मूल कहो, वीतरागी संतों के अनुभव का हार्द कहो, सम्यग्दर्शन की रीत कहो, या सबसे पहला धर्म कहो—उसका अलौकिक स्वरूप इस गाथा में आचार्यदेव ने प्रकाशित किया है। निश्चय-व्यवहार के समस्त स्पष्टीकरण इस गाथा में आ जाते हैं। इस गाथा के भाव समझने से सर्व शास्त्रों का हार्द समझ में आ जाता है... अपूर्व सम्यग्दर्शन होता है... और आनंदरस की धारा आत्मा में प्रवाहित होती है।

[जय हो भरतक्षेत्र के राजा समयसार भगवान की!]

ज्ञान-दर्शन-चारित्रस्वरूप आतमा है; ऐसे गुण-गुणी भेदरूप व्यवहार द्वारा परमार्थतत्त्व का कथन किया गया; उस परमार्थ तत्त्व को जिसने अनुभव में ले लिया और भेद का अवलंबन छोड़ दिया—उसके लिये 'व्यवहार, वह परमार्थ का प्रतिपादक' कहा है। लेकिन जो व्यवहार के भेद-विकल्प में अटक जाता है और भेद के विकल्प को लाँघकर अभेद में न पहुँचे, उसको समझाते हैं कि हे भाई! व्यवहार तो समस्त अभूतार्थ है; व्यवहार स्वयं कहीं परमार्थ नहीं।—व्यवहार को परमार्थ का प्रतिपादक तभी कहा जाता है, जब उस व्यवहार का लक्ष छोड़कर अभेदरूप परमार्थ को लक्ष में ले। परमार्थ कहो या भूतार्थ कहो, वह एक शुद्ध ज्ञायकभाव है, ऐसे भूतार्थस्वभाव का शुद्धनय द्वारा अनुभव करना ही सम्यग्दर्शन है।—ऐसे सम्यग्दर्शन का प्रतिपादन करनेवाला यह 11 वाँ सूत्र जैन सिद्धान्त का प्राण है, वीतरागी संतों का हार्द समयसार की 11वीं गाथा में है।

व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ है—ऐसा ऋषियों ने दर्शाया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय करते हैं, वे निश्चय से सम्यग्दृष्टि हैं। देखो, यह सम्यग्दर्शन का अमोघ

उपाय! सर्व संतों के अनुभव का हार्द इस गाथा में समा जाता है।

प्रथम 'ज्ञान, वह आत्मा'—ऐसे व्यवहार को परमार्थ का प्रतिपादक कहा, और फिर वह 'व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है'—ऐसा भी कहा। अब, यदि व्यवहार वह परमार्थ का प्रतिपादक है तो उस व्यवहारनय का क्यों अनुसरण नहीं करना?—ऐसे प्रश्न का स्पष्टीकरण इस गाथा में है तथा सम्यग्दृष्टि के अनुभव का भी वर्णन है।

हे भाई! आत्मा के भूतार्थ-सत्य स्वभाव को देखनेवाला शुद्धनय ही भूतार्थ है, व्यवहारनय तो अभूतार्थभाव को देखनेवाला होने से अभूतार्थ है। उस अभूतार्थस्वरूप, अशुद्धस्वरूप, रागवान और संयोगवान आत्मा को देखने से सम्यग्दर्शन नहीं होता; शुद्धनय द्वारा शुद्ध-भूतार्थ आत्मा का अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है।—इसप्रकार भूतार्थ का आश्रय करनेवाले ही सम्यग्दृष्टि हैं; इसलिये व्यवहारनय अनुसरण करनेयोग्य नहीं है;—यह सिद्धांत जैनदर्शन का प्राण है, मोक्षमार्ग का मूल है।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप क्या है, उसकी यह बात है।

आत्मा को कर्मसंबंधवाला—अशुद्ध कहनेवाला व्यवहार हो, या 'ज्ञान, वह आत्मा' ऐसा गुणभेद कहनेवाला व्यवहार हो, किसी भी प्रकार का हो, वह सब व्यवहार आत्मा के सहज एक ज्ञायकस्वभाव को नहीं बतलाता परंतु अभूतार्थरूप भावों को (संयोग को, राग को या भेद को) बतलाता है, और ऐसे आत्मा का अनुभव करने से—श्रद्धा करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता, इसलिये वह सब व्यवहार आश्रय करने योग्य नहीं है। शुद्धनय ही अंतर्मुख होकर आत्मा का सहज एक ज्ञायकस्वभावरूप अनुभव करता है; इसलिये उस शुद्धनय को भूतार्थ कहा है। उसका आश्रय करना अर्थात् शुद्धनय अनुसार शुद्ध आत्मा का अनुभव करना, वह सम्यग्दर्शन है; वही जैनदर्शन का आत्मा है। जहाँ ऐसा शुद्धनयरूप प्राण है, वहीं जैनधर्म जीवित है। ऐसे शुद्धनय से शुद्धात्मा के ज्ञान-श्रद्धान बिना जैनधर्म नहीं होता।

द्रव्य, वह द्रव्य है; पर्याय, वह पर्याय है; पर्यायरूप से तो पर्याय सत् है, लेकिन पर्याय, वह संपूर्ण द्रव्य नहीं। जब भूतार्थस्वभाव का आश्रय करके पर्याय परिणमित हुई, तब अभेदस्वभाव एक ही अनुभव में रहा और पर्याय गौण हो गई, अर्थात् वह अभूतार्थ हो गई। पर्याय है ही नहीं—इसलिये उसे अभूतार्थ कही है—ऐसा नहीं। पर्यायरूप से पर्याय है, लेकिन अभेद स्वभाव के अनुभव में उसका लक्ष नहीं रहता, इसलिये वह पर्याय अभूतार्थ है।

आत्मवस्तु द्रव्यरूप तथा पर्यायरूप है। ऐसी वस्तु, वह प्रमाण है। ऐसा आत्मा पर से बिलकुल भिन्न है। अब अपने में द्रव्य और पर्याय ऐसे दो अंश हैं। उनमें पर्याय, वह व्यवहारनय का विषय है और शुद्धनय का विषय भूतार्थस्वभाव है–उसमें पर्याय गौण है।

द्रव्यअंश, पर्यायअंश—ऐसे दो अंश हैं; उनमें द्रव्य, वह पर्याय नहीं; पर्याय, वह द्रव्य नहीं—ऐसी भिन्नता है, लेकिन वस्तु में भिन्नता नहीं है।

आत्मा में पर्याय है ही नहीं—ऐसा कोई निषेध नहीं है। लेकिन अभेद अनुभव करने का प्रयोजन होने से, अभेद को मुख्य करके उसको निश्चय कहकर उसका आश्रय कराया है, और भेद को गौण करके उसे व्यवहार कहकर उसका निषेध किया है। क्योंकि पर्याय के भेदरूप विशेष पर लक्ष रहने से समभाव–निर्विकल्पदशा नहीं होती परंतु रागादि विकल्प उत्पन्न होते हैं, और अभेदरूप भूतार्थस्वभाव सामान्य है, उसके आश्रय से समभाव अर्थात् निर्विकल्पदशा होती है। इसलिये अभेदरूप सामान्य के अनुभव में पर्याय के भेद का अभाव ही कहा है। वहाँ पर्याय है तो अवश्य, पर्याय ने ही अंतर्मुख होकर सामान्य का आश्रय किया है, लेकिन वहाँ अभेद में भेद गौण हो जाता है, उसका लक्ष नहीं रहता।

सम्यग्दर्शन के अनुभव में रागादि अशुद्धभावोंरूप असद्‌भूतव्यवहार तो नहीं है, और 'यह शुद्ध पर्याय इस द्रव्य की है'—ऐसे भेदरूप सद्‌भूतव्यवहार भी सम्यग्दर्शन के विषय में नहीं रहता। अभेद को अमेचक अर्थात् शुद्ध कहते हैं, और भेद को मेचक अर्थात् अशुद्ध कहते हैं। भले ही निर्मल पर्याय का भेद हो, परंतु उस भेद का विकल्प तो अशुद्ध है, भेद के आश्रय से अशुद्धता होती है। भेदरूप पर्यायदृष्टि में राग–द्वेष अशुद्धता का अनुभव होता है और अभेदरूप सामान्य का आश्रय लेने से वीतरागी समभाव होता है। अभेद के अनुभव में पर्याय होने पर भी उसका लक्ष नहीं है, इसलिये वह अभूतार्थ है।

वस्तु में सामान्य और विशेष ऐसे दो अंश हैं। उनमें विशेष अंश, वह सामान्य नहीं और सामान्य अंश, वह विशेष नहीं; परंतु एक साथ दोनों अंश हैं।

अब केवल पर्याय–अंश से वस्तु को देखने पर मिथ्यात्व होता है। अनादि से जीव को पर्यायबुद्धि तो है; अब सामान्य वस्तु की ओर झुककर चलनेवाली पर्याय ने उसका आश्रय लिया वहाँ सामान्य के लक्ष से पर्याय का लक्ष छूट गया, इसलिये वहाँ पर्याय नहीं है, ऐसा कहा

है। वहाँ परमस्वभाव में पर्याय एकाग्र होकर अभेद का अनुभव करती है। ऐसे अनुभव में द्रव्य के परमस्वभाव का आत्मलाभ है।

त्रैकालिक अखंड स्वभाव का अनुभव, वह भूतार्थ का आश्रय है, और उस अनुभव में पर्याय के किसी भी भेद का लक्ष नहीं रहता; वहाँ पर्याय है लेकिन वह गौण हो जाती है। इसलिये उसका लक्ष छूट जाता है और एक भूतार्थ सर्वोपरि परमतत्त्व ही अनुभूति में प्रकाशमान रहता है।

सम्यग्दर्शन में सत्यवस्तु का स्वीकार होता है। वह सत्य अर्थात् क्या? उसका यह वर्णन है। शुद्धनय के विषयरूप एक अभेद स्वभाव है, वह भूतार्थ है और व्यवहारनय के विषयरूप पर्यायभेद आदि अभूतार्थ हैं। देखो, इसमें कहीं वेदांत जैसा पर्याय का अभाव नहीं है, पर्यायरूप धर्म तो सत् में है, लेकिन शुद्धनय से एक अभेद के मुख्य अनुभव में पर्याय का भेद नहीं रहता, इसलिये पर्याय को गौण करके उसको असत् कहा है। यह साधकदशा की बात है। जिसे स्वसन्मुख होकर वस्तु की शुद्धता को साधना है—ऐसा जीव क्या करता है? कि अंतर्मुख होकर भूतार्थस्वभाव का आश्रय करता है, और पर्याय का (शुद्ध या अशुद्ध समस्त भेदों का) आश्रय छोड़ता है। एक शुद्ध वस्तु के अनुभव में पर्याय की एकता का लक्ष छूट जाता है। पर्याय तो द्रव्य के आश्रय में प्रविष्ट हो गई, वहाँ उस पर्याय को पर्याय का लक्ष नहीं रहा। एकाकार ज्ञायक वस्तु के अनुभव में ही पर्याय मग्न हुई, परम आनंद का ही अनुभव रहा।—इसलिये ऐसे आत्मा को सच्चा आत्मा माना, उसे भूतार्थ कहा, उसे सत्यार्थ कहा, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन कहा।—ऐसा अनुभव, वह जैनधर्म है। इस गाथा में उसका स्वरूप दर्शाया है, इसलिये यह गाथा जैनधर्म का प्राण है।

सम्यग्दर्शन के आठ अंग की कथा

सम्यक्तयुत आचार ही संसार में एक सार है,
जिनने किया आचरण उनको नमन सौ-सौ बार है।
उनके गुणों के कथन से गुण ग्रहण करना चाहिये,
अरु पापियों का हाल सुनकर पाप तजना चाहिये॥

(6) स्थितिकरण अंग में प्रसिद्ध वारिषेण मुनि की कथा

[पहली निःशंक अंग में प्रसिद्ध अंजनचोर की कथा, दूसरी निःकांक्ष अंग में प्रसिद्ध सती अनंतमती की कथा, तीसरी निर्विचिकित्सा अंग में प्रसिद्ध उदायन राजा की कथा, चौथी अमूढ़दृष्टि अंग में प्रसिद्ध रेवतीरानी की कथा और पाँचवीं उपगूहन अंग में प्रसिद्ध जिनेन्द्र भक्त सेठ की कथा आपने पढ़ी; अब छठवीं कथा आप यहाँ पढ़ेंगे।]

महावीर भगवान के समय में राजगृहीर नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करते थे। चेलनादेवी उनकी महारानी और वारिषेण उनका पुत्र था। वारिषण के अति सुंदर बत्तीस रानियाँ होते हुए भी वह बहुत वैरागी तथा आत्मज्ञान का धारक था।

एक बार राजकुमार वारिषेण उद्यान में ध्यान कर रहे थे, इतने में विद्युत् नाम का चोर एक मूल्यवान हार की चोरी करके भाग रहा था; उसके पीछे सैनिक भाग रहे थे। मैं पकड़ा जाऊँगा, इस डर के कारण हार को वारिषेण के आगे फेंककर वह चोर छिप गया, राजकुमार को ही चोर समझकर राजा ने फाँसी की सजा दी, परंतु जब बधिक ने राजकुमार पर तलवार चलाई, तब वारिषेण के गले में तलवार के बदले पुष्पों की माला हो गई, तथापि राजकुमार तो अपने ध्यान में मग्न थे।

ऐसा चमत्कार देखकर चोर को पश्चाताप हुआ। उसने राजा से कहा कि मैं हार का

चोर हूँ, मैंने ही हार की चोरी की थी, यह राजकुमार तो निर्दोष हैं। इस बात को सुनकर राजा ने राजकुमार से क्षमा माँगी और राजमहल में आने को कहा।

परंतु वैरागी वारिषेणकुमार ने कहा—पिताजी! इस असार संसार में अब जी भर गया है; राजपाट में कहीं भी मेरा मन नहीं लगता, मेरा चित्त तो एक चैतन्यस्वरूप आत्मा को ही साधने में मग्न है, अब मैं दीक्षा ग्रहण करके मुनि होऊँगा। ऐसा कहकर एक मुनिराज के पास जाकर दीक्षा ग्रहण की... और आत्मा को साधने में मग्न हो गये।

अब, राजमंत्री का पुत्र पुष्पडाल था, वह बचपन से ही वारिषेण का मित्र था और उसका विवाह अभी कुछ ही दिन पहले हुआ था; उसकी स्त्री बहुत सुंदर नहीं थी। एकबार वारिषेण मुनि घूमते-घूमते पुष्पडाल के यहाँ पहुँचे और पुष्पडाल ने विधिपूर्वक आहारदान दिया.... इस अवसर पर अपने मित्र को धर्म प्राप्त कराने की भावना मुनिराज को जागृत हुई। आहार करके मुनिराज वन की ओर जाने लगे, विनयवश पुष्पडाल भी उनके पीछे-पीछे गया। कुछ दूर चलने के बाद उसको ऐसा लगा कि अब मुनिराज मुझे रुकने को कहें और मैं घर पर जाऊँ। लेकिन मुनिराज तो चले ही जाते हैं... तथा मित्र से कहते ही नहीं कि अब तुम रुक जाओ!

पुष्पडाल को घर पहुँचने की आकुलता होने लगी। उसने मुनिराज को स्मरण दिलाने के लिये कहा कि—बचपन में हम इस तालाब और आम के पेड़ के नीचे साथ खेलते थे, यह वृक्ष गाँव से दो-तीन मील दूर है... हम सब गाँव से दूर आ गये हैं....

—यह सुनकर भी वारिषेण मुनि ने उससे रुक जाने को नहीं कहा। अहा, परम हितैषी मुनिराज मोक्षमार्ग को छोड़कर संसार में जाने को कैसे कहें? मुनिराज की तो यही भावना है कि मेरा मित्र भी मोक्षमार्ग में मेरे साथ ही आये—

हे सुखा, चल न हम साथ चलें मोक्ष में,
छोड़ें पर भाव को झूलें आनंद में;
जाऊँ मैं अकेला और तुझे छोड़ दूँ?
चल न तू भी मेरे साथ ही मोक्ष में...

अहा, मानो अपने पीछे-पीछे चलनेवाले को मोक्ष में ले जा रहे हों—इसप्रकार परम

निस्पृहता से मुनि तो आगे ही आगे चले जा रहे हैं। पुष्पडाल भी संकोचवश उनके पीछे-पीछे चला जा रहा है।

चलते-चलते वे आचार्य महाराज के पास पहुँचे और वारिषेण मुनि ने कहा—प्रभो! यह मेरा बचपन का मित्र है, और संसार से विरक्त होकर आपके पास दीक्षा लेने आया है। आचार्य महाराज ने उसे निकट भव्य जानकर दीक्षा दे दी। अहा, सच्चा मित्र तो वही है जो जीव को भव-समुद्र से पार करे।

मित्र के आग्रहवश पुष्पडाल यद्यपि मुनि हो गया और बाह्य में मुनि के योग्य क्रियायें भी करने लगा, परंतु उसका चित्त अभी भी संसार से छूटा न था। भावमुनिपना अभी उसे नहीं हुआ था; प्रत्येक क्रिया करते समय उसे अपने घर की याद आती थी। सामायिक करते समय भी बारंबार उसे अपनी पत्नी स्मरण होता था। वारिषेणमुनि उसके मन को स्थिर करने के लिये उसके साथ ही रहकर उसे सदैव उत्तम ज्ञान-वैराग्य का उपदेश देते थे, परंतु पुष्पडाल का मन अभी धर्म में स्थिर नहीं हुआ था।

ऐसा करते-करते 12 वर्ष बीत गये। एक बार वे दोनों मुनिवर महावीर भगवान के समवसरण में बैठे थे, उससमय इन्द्रों ने भगवान की स्तुति करते हुए कहा कि—हे नाथ! इस राज-पृथ्वी को छोड़कर आप मुनि हुए, जिससे पृथ्वी अनाथ होकर आपके विरह में झूरती है और उसके आँसू इस नदी के रूप में बह रहे हैं।

अहा, इन्द्र ने तो स्तुति द्वारा भगवान के वैराग्य की स्तुति की; लेकिन जिसका चित्त अभी वैराग्य में नहीं लगा था, उस पुष्पडाल को तो वह श्लोक सुनकर ऐसा लगा कि अरे! मेरी स्त्री भी इस पृथ्वी की भाँति 12 वर्श से मेरे बिना दु:खी होती होगी। मैंने बारह वर्ष से उसका मुँह भी नहीं देखा, मुझे भी उसके बिना चैन नहीं पड़ता, इसलिये चलकर उसकी खबर ले आऊँ। कुछ समय और उसके साथ रहकर फिर दीक्षा ग्रहण कर लूँगा।

— ऐसा विचार कर पुष्पडाल तो किसी से पूछेताछे बिना घर की ओर चल दिया। वारिषेणमुनि उसकी गतिविधि को समझ गये; हृदय में मित्र के प्रति धर्मवात्सल्य की भावना जागृत हुई कि किसी प्रकार मित्र को धर्म में स्थिर करना चाहिये।—ऐसा विचार कर वह भी उसके साथ चल दिये, और उसे साथ लेकर अपने राजमहल में आये।

मित्र सहित अपने पुत्र को महल में आया देखकर चेलना रानी को आश्चर्य हुआ कि क्या वारिषेण मुनिदशा का पालन न कर सकने से वापिस आया है !—ऐसा उन्हें संदेह हुआ। उसकी परीक्षा के लिये एक सोने का आसन और एक लकड़ी का आसन रखा, लेकिन वैरागी वारिषेणमुनि तो वैराग्यपूर्वक लकड़ी के आसन पर बैठ गये। इससे विचक्षण चेलनादेवी समझ गईं कि पुत्र का मन तो वैराग्य में दृढ़ है, उसके आगमन का अन्य कोई प्रयोजन होगा।

वारिषेणमुनि के आगमन से गृहस्थाश्रम में रही हुईं 32 रानियाँ उनके दर्शन करने को आईं। राजमहल का अद्‌भुत वैभव और ऐसी सुंदर 32 रानियों को देखकर पुष्पडाल तो आश्चर्य में पड़ गया.... कि अरे! ऐसा राजवैभव और ऐसी 32 रानियों के होने पर भी राजकुमार उनकी ओर देखते ही नहीं... उनका त्याग कर देने के बाद उनका स्मरण भी नहीं करते! आत्मसाधना में अपना चित्त जोड़ दिया है। वाह, धन्य है इन्हें! और मैं एक साधारण स्त्री का मोह भी नहीं छोड़ सकता। अरे! मेरा बारह-बारह वर्ष का साधुपना व्यर्थ गया!

वारिषेणमुनि ने पुष्पडाल से कहा : हे मित्र! अब भी तुझे संसार का मोह हो तो तू यहीं रुक जा और इस वैभव का उपभोग कर! अनादिकाल से जिस संसार को भोगते हुए तृप्ति न हुई, उसे तू अब भी भोगना चाहता है... तो ले, तू इस सबका उपभोग कर! वारिषेणमुनि की बात सुनकर पुष्पडाल अत्यंत लज्जित हुआ, उसकी आँखें खुल गईं और उसका आत्मा जागृत हो गया।

राजमाता चेलना सब परिस्थिति समझ गईं, और पुष्पडाल को धर्म में स्थिर करने हेतु बोलीं—अरे मुनिराज! आत्म-साधना का ऐसा अवसर बारंबार प्राप्त नहीं होता, इसलिये तुम अपना चित्त मोक्षमार्ग में लगाओ। यह सांसारिक भोग तो इस जीव ने अनंतबार भोगे हैं, इनमें किंचित् सुख नहीं है... इसलिये उनका मोह छोड़कर मुनिधर्म में अपने चित्त को स्थिर करो।

वारिषेण मुनिराज ने भी ज्ञान-वैराग्य का सुंदर उपदेश दिया और कहा कि—हे मित्र! अब अपने चित्त को आत्मा की आराधना में दृढ़ करो और मेरे साथ मोक्षमार्ग में चलो!

पुष्पडाल ने कहा—प्रभो! आपने मुझे मुनिधर्म से डिगते हुए बचाया है, और सच्चा बोध देकर मोक्षमार्ग में स्थिर किया है; अत: आप सच्चे मित्र हैं। आपने धर्म में स्थितिकरण करके महान उपकार किया है। अब मेरा मन इन सांसारिक भोगों से वास्तव में उदास होकर

आत्मा के रत्नत्रयधर्म की आराधना में स्थिर हुआ है। अब मुझे स्वप्न में भी इस संसार की इच्छा नहीं है... अब तो अंतर में लीन होकर आत्मा के चैतन्यवैभव की साधना करूँगा।

इसप्रकार प्रायश्चित करके पुष्पडाल फिर से मुनिधर्म में स्थिर हुआ... और मुनि वन की ओर चल दिये।

वारिषेण मुनिराज की कथा हमें ऐसी शिक्षा देती है कि—कोई भी साधर्मी-धर्मात्मा कदाचित् शिथिल होकर धर्ममार्ग में डिगता हो तो उसका तिरस्कार न करके प्रेमपूर्वक उसे धर्ममार्ग में स्थिर करना चाहिये। सर्वप्रकार से उसकी सहायता करनी चाहिये। धर्म का उल्लास जागृत करके, जैनधर्म की महिमा समझाकर या वैराग्य द्वारा उसे धर्म में स्थिर करना चाहिये। तथा अपने आत्मा को भी धर्म में विशेष-विशेष स्थिर करना चाहिये। कैसी भी प्रतिकूलता आये परंतु धर्म में नहीं डिगना।

परद्रव्यों को विकार का कर्ता मानना अपराध है

अरे जीव! यदि परद्रव्य ही तुझे जबरन अशुद्धता कराते हों तो उस अशुद्धता से छूटने का अवसर कब आवेगा?—क्योंकि परद्रव्य तो जगत में सदा हैं; यदि वही विकार कराते हों तब भी निरंतर विकार होता ही रहे और विकार से छूटने का अवसर ही कभी प्राप्त न हो।—तेरा शुद्ध या अशुद्ध परिणमन तुझसे ही है—ऐसा तू जान ले तो शुद्धद्रव्य के आश्रय से शुद्धता प्रगट करके अशुद्धता को दूर करने का अवसर तुझे अवश्य आयेगा।

तू अपनी स्वतंत्रता जान कि मैं बाह्योन्मुख हुआ, इसलिये मुझे अशुद्धता हुई; और मैं अंतरोन्मुख होऊँ तो मुझे शुद्धता हो। मेरी अशुद्धता में या शुद्धता में परद्रव्य का किंचित्मात्र हाथ नहीं है।—ऐसी स्वतंत्रता को जानकर स्वसन्मुख होने से शुद्धता का अवसर आता है।

परंतु जो जीव अपनी स्ववस्तु को नहीं जानता, जिसका समस्त ज्ञान विपरीत है, जिसके सम्यक्त्वचक्षु मुँद गये हैं, वह जीव मोहशत्रु की सेना को नहीं जीत सकता। उसका अपराध क्या?—कि वह कर्मादि परद्रव्यों को विकार का कर्ता मानता है, वह उसका महान अपराध है।

अहो, स्व-तत्त्व का परम स्वभाव!

नियमसार, गाथा 50 से

नियमसार में स्वतत्त्व का स्वरूप बतलाकर उसका ग्रहण कराया है। विभावरहित आत्मा का स्वभाव जोकि ग्रहण करनेयोग्य है, अनुभवन करनेयोग्य है, जो श्रद्धा-ज्ञान में लेनेयोग्य है, और जो प्रत्येक जीव में शुद्धरूप से विराजमान है—उसकी वह बात है।

भाई, तूने सदा अपने आत्मा का विभावरूप ही अनुभव किया है, विभाव से भिन्न अपना अस्तित्व तुझे भासित नहीं हुआ। सुखस्वरूप तो तेरा तत्त्व स्वयं ही है, उसके आश्रय से ही तुझे सुख होगा। तेरे स्वगृह की बात संत तुझे बतलाते हैं। तू कोई क्षणिक नहीं है; पर्याय में उदयादि भावों के भेद पड़ते हैं, उन्हें स्वद्रव्य नहीं कहते, उन क्षणिक भावों जितना तू नहीं है। तेरे परम स्वभाव का आधार तेरा द्रव्य है—ऐसा आधार-आधेय का भेद भी वास्तव में कहाँ है ? आधार-आधेय के विकल्प स्वतत्त्व के अनुभव में नहीं है; स्वतत्त्व तो आधार-आधेय के विकल्पों से पार है। स्वभाव आधेय और द्रव्य आधार;—ऐसा भी भेदविकल्प जहाँ नहीं है, वहाँ राग का आधार आत्मा—यह बात कहाँ रही ? रागभाव तो चैतन्यभाव से बिलकुल भिन्न है। अहा, स्वतत्त्व की कोई परम अद्भूत महिमा है, उसका श्रवण भी महा भाग्य से मिलता है। पूर्वकाल में तो स्वतत्त्व की महिमा कभी सुनी ही नहीं थी; अब स्वतत्त्व की प्रतीति होने से कोई परभाव अपने रूप भासित नहीं होते। अरे, आत्मा तो किसे कहा जाये ! यह मेरा गुण और मैं उसका आधार—इतना विकल्प भी जिसमें नहीं चल सकता, विकल्प जिसमें प्रवेश नहीं कर सकता, ऐसे आत्मा को लक्ष में लेने से संसार के परभावों का रस उड़ जाता है और आत्मा परभाव से छूटकर केवलज्ञानादि शुद्धभावरूप परिणमित हो जाता है।

जो आत्मा के परम सुख के अभिलाषी हों, जो मोक्षार्थी हों, वे अपने को एक शुद्ध परम चैतन्यभावरूप ही सदा अनुभव करो। ऐसा तत्त्व, वही तेरा स्वतत्त्व है, वही मैं हूँ;—ऐसे अनुभव के अतिरिक्त अन्य सब मुझसे पर है, वह मैं नहीं हूँ। चार भावों के जितने भेद हैं, उन सब भेदों के विकल्पों से पार मेरा परमतत्त्व शुद्ध चैतन्यमात्र हे। निर्मलबुद्धिवाले, उज्ज्वल चित्तवाले हे मुमुक्षु जीवों ! तुम ऐसा अनुभव करो। सिद्धांत में ऐसा आत्मा कहा है, उसका तुम सेवन करो; ऐसे आत्मा के सेवन से अवश्य तुम्हें मोक्षसुख का अनुभव होगा, तुम सम्यक्त्वादि अति अपूर्व सिद्धि को प्राप्त करोगे। ●●

'मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ'

राग से भिन्न जो चैतन्य की अनुभूति है, वही मैं हूँ; मेरा चैतन्यस्वरूप ही जगत में सर्वश्रेष्ठ है।—इसप्रकार स्वयं अपने को चैतन्यराजा रूप से जानकर—श्रद्धा करके—अनुभव करके मुमुक्षु जीव स्वयं अपनी अनुभूति द्वारा मोक्ष को साधता है। भाई, आत्मा की सेवा का और मोक्ष को साधने का यह उत्तम अवसर है।

[अमेरली (सौराष्ट्र) में फाल्गुन शुक्ला एकम से पंचमी तक श्री जिनेन्द्र प्रतिष्ठा-महोत्सव के अवसर पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। श्री समयसार गाथा 17-18]

आत्मा शरीर से भिन्न एक महान चैतन्यतत्त्व है। भाई, तुझे अपना कल्याण करना हो तो तेरा आत्मस्वभाव कैसा है, कितना है, वह जानना पड़ेगा। आत्मस्वरूप का माप अज्ञान से या राग से नहीं हो सकता। अंतर में ज्ञान द्वारा आत्मा को पहिचान, तभी तेरे जन्म-मरण का अंत आयेगा। जिसप्रकार राजा को पहिचानकर उसकी सेवा करने से धन के अर्थी को धन का लाभ होता है, उसीप्रकार जगत में सर्वश्रेष्ठ ऐसे इस चैतन्यराजा को पहिचानकर उसकी सेवा अर्थात् अनुभव करने से मोक्षार्थी को मोक्ष का लाभ होता है।

अरे, 'आत्मा शुद्ध है, बुद्ध है, निर्विकल्प है'—ऐसे अध्यात्म-विद्या के संस्कार तो प्राचीन काल में बालक को पालने में झुलाते-झुलाते माताएँ लोरियों में सुनाती थीं। वर्तमान में भी बाल-युवा-वृद्ध सर्व जीव शुद्ध ज्ञानानंदस्वरूप हैं; ऐसे संस्कार डालकर आत्मप्रतीति करना चाहिये। भाई, तू अनादि से शुभाशुभराग का सेवन कर रहा है, परंतु उससे तुझे किंचित् सुख की प्राप्ति नहीं हुई; सुख का भंडार तो इस चैतन्यराजा के पास है, उसे पहिचानकर उसकी सेवा कर, उसकी श्रद्धा-ज्ञान-अनुभव कर तो तुझे सुख की प्राप्ति होगी।

आत्मा को कैसा अनुभवना? यह बात इस समयसार में समझायी है; उसमें यह 17-

18वीं गाथा पढ़ी जा रही है। यह आत्मा के अनुभव की बड़ी ऊँची बात है; जिसे सुखी होना हो, उसे यह बात समझने जैसी है; इसे समझने पर ही सुख की प्राप्ति हो सकती है; शेष सब तो मृग–जल की भाँति व्यर्थ दौड़धूप है।

जिसे अपना हित करना हो और सुखी होना हो, उसे प्रथम तो ऐसा निण्रय करना चाहिये कि मैं इस शरीर से भिन्न एक आत्मा हूँ; पूर्वजन्म में भी मैं ही था और यह शरीर छूटने के बाद भी मैं ही रहनेवाला हूँ। अरे रे, जीव अपने को भूलकर जगत के पाप में लगा रहता है, जगत के पदार्थों की रुचि और मूल्यांकन करता है और अपना मूल्य भूलकर दुःखी होता है। परंतु मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ, मैं अपने अनंत गुणों के वैभव से राजित–शोभित हूँ;—इसप्रकार अपनी पहिचान करके उसकी महिमा और अनुभव करने से अतीन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। भाई, अनंतकाल तक सुख प्राप्त हो—ऐसा सुख का पंथ संत तुझे बतलाते हैं; उस पंथ को पहिचानकर मोक्षनगरी में जाने का यह अवसर है।

अरे, एक गाँव से दूसरे गाँव जाना हो तो भी लोग पाथेय (कलेवा) साथ ले जाते हैं; तो फिर यह भव छोड़कर परलोक में जाने के लिये आत्मा की पहिचान रूपी पाथेय साथ लेना चाहिये या नहीं? आत्मा कहीं इसी भव जितना नहीं है; यह भव पूर्ण करके भी आत्मा तो अनंत काल तक अविनाशी रहनेवाला है; तो उस अनंतकाल तक उसे सुख प्राप्त हो—ऐसा कोई प्रयत्न तो करो! ऐसा मनुष्य अवतार और सत्समागम का ऐसा अवसर मिलना अति दुर्लभ है। आत्मा की दरकार किये बिना ऐसा अवसर चूक जायेगा तो भव–भ्रमण के दुःख से तूरा छुटकारा कब होगा? अरे, तू चैतन्यराजा, तू स्वयं आनंद का नाथ! भाई, तुझे ऐसा दुःख शोभा नहीं देता। जैसे राजा अज्ञानवश अपने को भूलकर घूरे पर लोटे, उसीप्रकार तू अपने चैतन्यस्वरूप को भूलकर राग के घूरे पर लोट रहा है, परंतु वह तेरा पद नहीं है; तेरा पद तो चैतन्य से सुशोभित है, चैतन्य हीरा उसमें जड़ा हुआ है, उसमें राग नहीं है। ऐसे स्वरूप को जानने से तुझे महा आनंद होगा।

अहा, आत्मा को राजा की उपमा देकर उसकी पहिचान करायी है। राजा उसे कहा जाता है जो स्वाधीन हो, जिसे किसी दूसरे की सेवा न करना पड़े... पराधीनता न हो। वह ऐसा पुण्य लेकर आया हो कि प्राकृतिकरूप से ही उसके राज्य में हीरा–मोती आदि बहुमूल्य पदार्थ

पैदा होते हों, ढ़ेरों अनाज पैदा होता हो; ऐसे राजा की सेवा करने से वह प्रसन्न होकर सेवा करनेवाले को इच्छित धन देता है। राजा का पुण्य विशिष्ट होता है; अपने राज-लक्षणों द्वारा वह दूसरों की अपेक्षा अलग दिखायी देता है। उसीप्रकार यह आत्मा तो चैतन्यऋद्धि का स्वामी परमार्थ राजा है, वह स्वाधीन है, स्वयं सुखस्वभावी है, उसे सुख के लिये किसी अन्य की सेवा नहीं करना पड़ती; सुख के लिये बाह्य विषयों का या राग का सेवन करना पड़े—ऐसा पराधीन वह नहीं है। चैतन्य राजा को उसके लक्षणों से पहिचानकर उसकी सेवा करने से वह प्रसन्न होकर मोक्षसुख प्रदान करता है। चैतन्य के अनुभवरूप विशेष लक्षण द्वारा इस चैतन्यराजा की पहिचान होती है। भाई, तू अंतर में देख! अंतर में जो 'यह चैतन्य... चैतन्य...' ऐसा अनुभव हो रहा है, वही तू है। मोक्षार्थी बनकर अंतर में ऐसे आत्मा की खोज कर।

अरे, इस भव-दु:ख की अब मुझे थकान लगी है, जगत का बड़प्पन मुझे नहीं चाहिये, मैं तो आत्मा की मुक्ति चाहता हूँ, ऐसा विचार करके, आत्मा का अर्थी होकर जो उसकी खोज करे, उसे आत्मा का पता लग सकता है—

'अेम विचारी अंतरे, शोधे सद्गुरु योग;
काम एक आत्मार्थनुं बीजो नहिं मन रोग।'

(श्रीमद् राजचन्द्र)

यह तो जिसे आत्मा की आवश्यकता हो, उसकी बात है। यह चार गति के अवतार मुझे अब नहीं चाहिये; संसार के वैभव में कहीं मेरा सुख नहीं है, मुझे अपने आत्मा का अनुभव चाहिये, उस अनुभव में ही मेरा सुख है।—इसप्रकार मोक्षार्थी होकर हे जीव! तू अपने आत्मा को खोज। चैतन्य के वेदनरूप तू अपने आत्मा को खोज। चैतन्य के वेदनरूप स्वलक्षण द्वारा उसे पहिचान।

अरे, चैतन्य का कल्याण करने के लिये जो जागृत हुआ, उसे जगत की प्रतिकूलता कैसी? अनंत प्रतिकूलता का समूह भले हो, परंतु भीतर मेरा चैतन्यतत्त्व आनंद का धाम है—इसप्रकार जो अंतर में उतरता है, वह मोक्ष के परम सुख का अनुभव करता है।'अहा, ऐसा अनुभव हमने किया है.... हे माता! ऐसे अनुभव की साक्षी पूर्वक कहते हैं कि अब संसार में पुन: अवतार धारण नहीं करेंगे; अंतर में देखे हुए आत्मा के पूर्ण आनंद को साधकर अब मोक्ष

में जायेंगे।—इसलिये हे माता! तू प्रसन्न होकर आनंदपूर्वक आज्ञा दे।'—इसप्रकार छोटे-छोटे बालक भी माता की आज्ञा लेकर मोक्ष को साधने के लिये वन में चले जाते हैं और आत्मा के आनंद में झूलते-झूलते मोक्ष को साधते हैं।

— ऐसे मोक्ष को साधने की जिसे जिज्ञासा हो, उसे उसकी रीति आचार्यदेव ने इस समयसार में बतलायी है। अंतर में चैतन्यस्वरूप से स्वयं अपने पहिचानकर श्रद्धा करते ही राग के वेदन से भिन्न होकर आत्मा अपने को आनंदस्वरूप अनुभव करता है। ऐसे अनुभव द्वारा ही जन्म-मरण के फेरे टलते हैं और आत्मा मोक्ष को साधता है।

आत्मा की पर्याय में अनेक भाव मिश्र हैं; चेतनभाव और रागादिभाव—ऐसे अनेक भाव अनुभव में आते हैं; उनमें ऐसा विवेक करना कि इनमें जो चेतनभावरूप से अनुभव में आता है, वह मैं हूँ और जो रागादि पुण्य-पापरूप से अनुभव में आता है, वह मेरा स्वरूप नहीं है।—इसप्रकार चेतन की अनुभूतिस्वरूप अपने को जानकर श्रद्धा करना कि 'यह अनुभूति ही मैं हूँ '—सो सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन है। ऐसे ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक आत्मा में नि:शंक स्थिति होती है। इसप्रकार साधक आत्मा की सिद्धि होती है, अन्य किसी प्रकार नहीं होती।

भाई, इस समय एकाग्र होकर अपने आत्मा की बात को सुन! आत्मा की बात सुनते समय अपना चित्त बाह्य में इधर-उधर घुमायेगा तो आत्मा का स्वरूप तू कब समझेगा? अहा, ऐसा अचिंत्य आत्मा वाणी से अगोचर, उसका स्वरूप अनुभव में लेने के लिये तो उपयोग कितना एकाग्र करना चाहिये? जिसकी प्रतीति होने पर अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आये, उसकी महिमा की क्या बात! अरे, एकबार ऐसे आत्मा को लक्ष में तो ले! जिसकी जाति पाप और पुण्य दोनों से भिन्न, जगत के किसी पदार्थ के साथ जिसकी तुलना न हो सके, ऐसा भगवान आत्मा तू स्वयं, उसे ज्ञान में लेते ही अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है। जिसप्रकार गन्ने में मीठा रस भरा है, गन्ना स्वयं ही मीठा है; उसीप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं आनंदरसमय है, उसमें सर्वत्र आनंद ही भरा है... जिसे जानते ही आनंद के अपूर्व झरने झरें और भव के दु:ख दूर हो जायें।... राग से पार वीतरागी सुख का भंडार आत्मा स्वयं है।

भाई! क्या तुझे परभावों का दु:ख नहीं लगा? क्या तुझे संसार-भ्रमण की थकान नहीं लगी? यदि लगी हो तो परभावों से भिन्न तेरा चैतन्यतत्त्व आनंद का धाम है। उसमें आकर

विश्राम कर! चैतन्यतत्त्व को जानते ही तेरी अनंतकालीन थकान उतर जायेगी और चैतन्य के अपूर्व सुख का तुझे अनुभव होगा। अरे, एकबार झाँककर अपने स्वरूप को देख तो सही! तू बाह्य विषयों का अनुसरण कर रहा है, उनमें तो दुःख है, उनके बदले अपने आनंदस्वरूप का अनुसरण कर, उसका अनुभव कर, तो तुझे महा आनंद होगा। गुजराती भजन में कहा है कि—

'अनुभवीने एटलुं रे... आनंदमां रहेवुं रे...
भजवा परब्रह्मने, बीजुं कांई न कहेवुं रे...'

भाई, करने जैसा तो यही है। परब्रह्म यह आत्मा स्वयं है, उसे पहिचानकर उसका भजन करना। तू चैतन्यानंद का पर्वत है, परंतु राग में एकता की ओट में तुझे राग से भिन्न अपना महान तत्त्व दिखायी नहीं देता। तुझे पुण्य-पाप दिखायी देते हैं, बाहरी वस्तुएँ दिखायी देती हैं और अपना चिदानंद आत्मा ही तुझे दिखायी नहीं देता! सबको देखनेवाला अपना आत्मा ही तुझे दिखायी नहीं देता? ....अरे, आश्चर्य की बात है कि स्वयं ही अपने को दिखायी नहीं देता! भाई, अज्ञान से तू बहुत दुःखी हुआ, फिर भी तुझे अपनी दया नहीं आती? तुझे अपनी सच्ची दया आती हो, और अपने आत्मा को दुःख से छुड़ाना हो तो प्रथम अपने आत्मा के अनुभव का कार्य कर। अन्य सबका प्रेम छोड़कर, चैतन्यस्वरूप आत्मा स्वयं कैसा है, उसे पहिचानकर अपने आत्मा को इस भव के भयंकर दुःखों से बचा! भाई, भवदुःख से आत्मा को छुड़ाने का यह अवसर है। आत्मा का सच्चा स्वरूप लक्ष में लेने से तेरे निजगृह का चैतन्यभंडार खुल जायेगा। अहो, ऐसी मेरी वस्तु! ऐसा आनंदधाम मैं स्वयं! मेरा आत्मा अद्भुत है!—वही मेरा विश्राम-स्थल है।—ऐसी प्रतीति होने पर उसी में तू निःशंकरूप से स्थित रहेगा। इसप्रकार तुझे अपने साध्यरूप शुद्ध आत्मा की सिद्धि होगी;—यह मुक्ति का उपाय है। जिन भगवंतों की यहाँ स्थापना होती है, उन भगवंतों ने ऐसे उपाय से आत्मा का सेवन करके मुक्ति प्राप्त की है और जगत के जीवों को भी इसी मार्ग का उपदेश दिया है। हे आत्मा के अर्थी जीवो! तुम ऐसे मार्ग को पहिचानकर उसका सेवन करो... अर्थात् रागादि से पार चैतन्यतत्त्व जैसा है, वैसा जानकर श्रद्धा में लेकर उसका अनुभव करो... जिससे जन्म-मरण से छूटकर तुम आत्मा के परम आनंद को प्राप्त होगे।

अज्ञानी जबरन रागादि परभावों का कर्ता बनता है।

आत्मा का नित्य ज्ञानानंदस्वभाव गंभीर है, जिसकी गंभीरता का भेद, राग के विकल्प से जानना अशक्य है। स्वानुभव से ही वह गंभीर आत्मस्वभाव प्राप्त किया जा सकता है। स्वभाव को भूला हुआ 'अज्ञानी' जबरन उन रागादि परभावों का 'कर्ता' होता है। जबरन कर्ता होता है—इसका मतलब है कि आत्मा के सहज ज्ञातास्वभाव में तो रागादि का कर्तृत्व नहीं है, किंतु अनित्य पर्याय में मिथ्यारुचि—अज्ञान के जोर से अज्ञानी शुभाशुभभावों का कर्तृत्व आत्मा में मानता है, आत्मा के सहज स्वभाव में जो बात नहीं है, उसका कर्तृत्व जबरन खड़ा करता है।

अरे जीव! तेरे सहज स्वरूप में क्या रागादि परभाव हैं?—नहीं हैं। तेरा सहज स्वभाव तो चैतन्यसूर्य है, उसमें 'रागादि का कर्तृत्व' जरा भी नहीं है। ज्ञान के द्वारा निजस्वरूप का अनुभव करने पर सहज अतीन्द्रिय आनंद का वेदन होता है। 'राग मेरा कार्य और मैं ज्ञानमय आत्मा उसका कर्ता' ऐसी मिथ्या कर्तृत्वबुद्धि द्वारा अज्ञानी आत्मा के सहज आनंद को नष्ट करता है। ऐसी कर्तृत्वबुद्धि से ही आत्मा के ऊपर 'जबरदस्ती' होती है। जो वस्तु आत्मस्वभाव में नहीं है, उसे हठपूर्वक उसमें मानना, घुसेड़ना—यह 'जबरदस्ती' है और ऐसा करने से आकुलता ही होती है, यही 'संसार' है।

सच्चा सुख

- जीव सुख चाहते हैं, परंतु वे राग में और संयोग में सुख को ढूँढ़ते हैं।
- भाई, सुख राग में होता है या वीतरागता में?
- वीतरागता ही सुख है, उसे जीव ने कभी नहीं जाना।
- जिसने राग में और पुण्य में सुख माना, उसे मोक्ष की श्रद्धा नहीं है।
- मोक्ष तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, रागमय नहीं है।
- अरिहंत और सिद्धभगवंतों के सुख को धर्मी जीव ही जानते हैं।
- स्व-पर के भेदज्ञानपूर्वक वीतरागविज्ञान द्वारा ही वह सुख अनुभव में आता है।

चैतन्य की मधुर चर्चा

[चैतन्यरस अत्यंत मधुर है, उसकी चर्चा मुमुक्षु को आनंदित करती है।]

❀ **प्रश्न :** द्रव्य-गुण-पर्याय के भेद के विचार में भी मिथ्यात्व है—सो कैसे ?

उत्तर : भेद के विचार, वह कहीं मिथ्यात्व नहीं है; ऐसे भेद-विचार तो सम्यग्दृष्टि को भी होते हैं; परंतु उस भेद-विचार में जो रागरूप विकल्प है, उस विकल्प को लाभ का कारण मानकर, उसमें जो जीव एकत्वबुद्धि करके अटकता है, उसे मिथ्यात्व है—ऐसा जानना। एकत्वबुद्धि के बिना भेद-विकल्प वह मिथ्यात्व नहीं है, वह अस्थिरता का राग है।

❀ **प्रश्न :** गुणभेद के विचार से भी मिथ्यात्व दूर न हो तो फिर मिथ्यात्व को कैसे दूर करना ?

❀ **उत्तर :** जिस शुद्धवस्तु में राग का मिथ्यात्व है ही नहीं, उस शुद्ध वस्तु में परिणाम तन्मय होने से मिथ्यात्व दूर होता है; अन्य किसी उपाय से मिथ्याव दूर नहीं होता। गुणभेद का विकल्प भी शुद्धवस्तु में कहाँ है ?—नहीं है; तो उस शुद्ध वस्तु की प्रतीति गुणभेद के विकल्प की अपेक्षा नहीं रखती। शुद्ध वस्तु में विकल्प नहीं है, और विकल्प में वस्तु नहीं है; दोनों की भिन्नता जानने पर परिणति विकल्प से हटकर (पृथक् होकर) स्वभाव में आयी, वहाँ सम्यक्त्व हुआ और मिथ्यात्व टल गया।—यह मिथ्यात्व दूर होने की रीति है। उसके लिये विकल्प की अपेक्षा चिदानंदस्वभाव की अनंत महिमा भासित होकर उसका अनंत रस आना चाहिये—ऐसा करने से परिणाम उसमें तन्मय होता है।

❀ **प्रश्न :** एक समय की पर्याय का दूसरे समय व्यय होता है—व्यय का अर्थ क्या ?

उत्तर : पर्याय का स्वभाव ऐसा है कि उसका अस्तित्व एक समय ही रहता है, बाद के समय में वह नहीं रहता; उसका नाम 'व्यय' है। द्रव्य त्रैकालिक है, पर्याय एक समय

पर्यंत है; इसलिये द्रव्य से देखने पर वस्तु नित्य दिखायी देती है और पर्याय से देखने पर अनित्य लगती है;—इसप्रकार वस्तु अनेकांतस्वरूप है।

❀ **प्रश्न :** नव तत्त्वों को जानना, वह सम्यग्दर्शन है या शुद्ध जीव को जानना, वह सम्यग्दर्शन है ?

उत्तर : नव तत्त्वों को यथार्थरूप से जानने पर उसमें शुद्ध जीव का ज्ञान भी साथ आ ही जाता है; और शुद्ध जीव को जाने तो उसे नव तत्त्वों का भी यथार्थ ज्ञान अवश्य होता है।—इसप्रकार नव तत्त्वों का ज्ञान उसे सम्यग्दर्शन कहो या शुद्ध जीव का ज्ञान कहो—दोनों एक ही हैं। (ज्ञान अर्थात् उस ज्ञानसहित प्रतीति, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।)

—इसमें एक विशेषता यह है कि सम्यक्त्व प्रगट होने की अनुभूति के काल में नवतत्त्वों पर लक्ष नहीं होता, वहाँ तो शुद्ध जीव पर ही दृष्टि होती है। और 'यह मैं'—ऐसी जो निर्विकल्प प्रतीति है, उसके ध्येयभूत अकेला शुद्ध आत्मा ही है।

❀ **प्रश्न :** निर्विकल्प अनुभूति में मन का संबंध छूट गया है—यह बात कितने प्रतिशत सच है ?

उत्तर : शत-प्रतिशत सच है; जो निर्विकल्पतारूप परिणमन है, उसमें तो मन का अवलंबन किंचित्मात्र नहीं है, उसमें तो मन का संबंध बिलकुल छूट गया है। उस समय अबुद्धिपूर्वक जो रागादि परिणमन हो, उसमें मन का संबंध है।

❀ **प्रश्न :** जीव किस वेद से मोक्ष प्राप्त करता है ?

उत्तर : पुरुषवेद, स्त्रीवेद या नपुंसकवेद—इन तीनों वेद का अभाव करे, तब जीव मोक्ष प्राप्त करता है; जब तक कोई भी वेद हो, तब तक जीव मोक्ष प्राप्त नहीं करता।—यह भाववेद की अपेक्षा से समझना चाहिये।

और मोक्षगामी जीव को अंतिम भव में द्रव्यवेद में पुरुषवेद ही होता है; परंतु उसका भी जब अभाव होता है, तब मोक्ष होता है, क्योंकि शरीर को साथ रखकर मोक्ष नहीं होता।

इसप्रकार किसी भी वेद से मोक्ष नहीं होता। जहाँ तक वेद है, वहाँ तक मोक्ष

नहीं है। मोक्ष प्राप्त करनेवाला जीव समस्त वेद से रहित, अवेदी होता है। इसलिये 'मोक्ष' तत्त्व की खोज करना हो तो अवेद मार्गणा में खोजा जा सकता है। वेद में वह नहीं मिलेगा।

❀ **प्रश्न :** मार्गणा अर्थात् क्या?

मार्गणा अर्थात् जीव को खोजन के प्रकार: जहाँ-जहाँ जीव मिले, वैसे स्थानों को मार्गणास्थान कहते हैं।

उत्तर : मार्गणास्थान कितने हैं?

मार्गणास्थान मुख्यत: 14 हैं। (वह प्रत्येक मार्गणा तथा उसके अंतर्भेद नीचे कौंस में बतलाये हैं)—

1. गति 4+1 (चार गतियाँ तथा एक सिद्ध गति)
2. इन्द्रिय 5+1 (एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तथा अतीन्द्रिय)
3. काय 6+1 (पृथ्वीकायादि पाँच स्थावर तथा त्रस-यह छह काय, तथा एक अकाय)
4. योग 15+1 (4 मन के, 4 वचन के, 7 काय के—कुल 15 योग, और एक अयोग)
5. वेद 3+1 (स्त्री-पुरुष-नपुंसक तीन वेद तथा एक अवेद)
6. कषाय 4+1 (क्रोधादि 4 कषाय तथा 1 अकषाय)
7. ज्ञान 8(मति आदि 5 सम्यग्ज्ञान, 3 अज्ञान)
8. संयम 7+1 (1 असंयम, 1 संयमासंयम, 5 संयम-कुल 7; तथा 1 संयम-असंयम दोनों से पार)
9. दर्शन 4 (चक्षु, अचक्षु आदि)
10. लेश्या 6+1 (कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल छह लेश्या, 1 अलेश्या)
11. भव्यत्व 2+1 (भव्य तथा अभव्य; तथा उन दोनों से पार)
12. सम्यक्त्व 6(तीन सम्यक्त्व; मिश्र, सासादन तथा मिथ्यात्व)
13. संज्ञित्व 2+1 (संज्ञी, असंज्ञी; संज्ञा-असंज्ञा दोनों से पार)
14. आहार 2 (आहारक, अनाहारक)

उपरोक्तानुसार 14 मार्गणा हैं। किस-किस मार्गणा में कौन-कौन गुणस्थानवाले जीव होते हैं? उनकी संख्या कितनी? उनका क्षेत्र कितना? उनका काल कितना? और उनके भाव कौन से?—आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन 'षटखंडागम' आदि सिद्धांत-ग्रंथा में है।

❀ **प्रश्न :** 14 मार्गणाओं में से कौन-कौन सी मार्गणाएँ 'निरंतर' हैं और कौन सी मार्गणाएँ 'सांतर' हैं?

उत्तर : पहले निरंतर और सांतर की व्याख्या :—जिन गति आदि मार्गणाओं में कोई न कोई जीव सदा विद्यमान हो, जीव के बिना खाली न हो, उस मार्गणा को 'निरंतर' कहा जाता है; और जिन मार्गणाओं में जीव कभी हो, कभी न हो—उन्हें सांतर (अंतरसहित) कहा जाता है।

सामान्यतः तो सभी मार्गणाएँ निरंतर हैं; परंतु विशेषरूप से देखने पर मार्गणा के अंतर्प्रकारों में से निम्नोक्त आठ प्रकार सांतर है:—

(1) अपर्याप्त मनुष्यगति; (2) वैक्रियिक मिश्रकाययोग;
(3) आहारक काययोग; (4) आहारक मिश्रकाययोग;
(5) सूक्ष्मसांपराय संयत; (6) उपशम सम्यक्त्व;
(7) सासादन सम्यक्त्व; (8) सम्यक् मिथ्यात्व।

(इन आठ मार्गणास्थानों में जीव कभी होते हैं और कभी इन मार्गणाओं वाला कोई भी जीव संसार में होता ही नहीं; इसलिये यह आठ प्रकार अंतर सहित हैं।)

— मार्गणा में जीव को ढूँढ़ने की रीति—(एक दृष्टांत—) जैसे कि गतिमार्गणा, उसमें—

❀ नरकगति में जीव है?.....हाँ।

❀ नरकगति में कितने जीव हैं? असंख्यात जीव हैं।

❀ नरकगति में जीवों का क्षेत्र कितना है? लोक के असंख्यातवें भाग का क्षेत्र है।

❀ नरकगति के जीवों का काल कितना है? सामान्यरूप से अनादि-अनंत; विशेषरूप से एक जीव का काल दस हजार वर्ष से लेकर 33 सागरोपम तक।

❀ नरकगति के जीवों को भाव कौन-कौन होते हैं ? औदायिकादि पाँचों भाव संभवित हैं। इसप्रकार सत्, संख्यादि आठ बोलों में प्रत्येक का वर्णन होता है।

(इसीप्रकार मनुष्यगति, देवगति आदि में भी उतारना) इसप्रकार सामान्य वर्णन करके फिर उसके अंतर्भेदों में प्रत्येक बोल लागू करना... जैसे कि प्रथम नरक में जीव हैं ? कितने जीव हैं ? कितना क्षेत्र है ? कितना काल है ? आदि।

तथा मार्गणा के साथ गुणस्थानों का भी वर्णन किया है—किस गुणस्थान में कौन-कौन सी मार्गणा संभवित हैं ? तथा किस मार्गणा में कौन-कौन से गुणस्थान संभवित हैं ? आदि अनेकप्रकार से विस्तारपूर्वक वर्णन सिद्धांत-ग्रंथों में किया है; वह सर्वज्ञता की प्रतीति करनेवाला और वीतरागता पोषक है। उन सिद्धांत-ग्रंथों में से महत्त्वपूर्ण विषयों का दोहन करके कभी कभी 'आत्मधर्म' में देने की संपादक की भावना है।

मार्गणास्थानों की भाँति गुणस्थानों में भी निरंतर और सांतर के भाग इसप्रकार हैं:—1, 4, 5, 6, 7, 13, 14; यह सात गुणस्थान तो निरंतर हैं, इन गुणस्थानोंवाले कोई न कोई जीव जगत में सदा होते ही हैं, उनका कभी विरह नहीं है; और शेष 2, 3, 8, 9, 10, 11, 12—यह सात गुणस्थान सांतर है।

❀ **प्रश्न :** भेदज्ञान की रीति अटपटी और कठिन लगे तो क्या करना ?

उत्तर : बारंबार दृढ़ता से अत्यंत प्रेमपूर्वक उसका अभ्यास करने से वह सुगम हो जाता है। भेदविज्ञान कर-करके अनंत जीव मुक्ति को प्राप्त हुए, वे जीव अपने जैसे ही थे, तो उन्होंने जो किया, वह अपने से भी हो सकता है। सच्ची रुचि से उसका अभ्यास करना चाहिये। अटपटा तो है परंतु असंभव नहीं है, इसलिये उसके सच्चे प्रयत्न से वह अवश्य हो सकता है। यथार्थ समझ से मार्ग सरल हो जाता है।

राग और ज्ञान के बीच सूक्ष्म संधि है, वे कहीं संधि के बिना एक-दूसरे में एकाकार नहीं हो गये हैं, इसलिये प्रज्ञाछैनी के बारंबार अभ्यास द्वारा उन्हें भिन्न करके शुद्धज्ञान का अनुभव किया जा सकता है। इसलिये निरंतर भेदज्ञान का अभ्यास करना चाहिये।

❀ **प्रश्न :** जातिस्मरण ज्ञान कब होता है ?

उत्तर : जिसे पूर्वभव के उसप्रकार से संस्कार हों, उसे यह ज्ञान होता है; परंतु मुमुक्षु को मुख्यता तो आत्मज्ञान की है, जातिस्मरण की मुख्यता नहीं है। मोक्ष का कारण आत्मज्ञान है, जातिस्मरण ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है। धर्मसंबंधी जातिस्मरण ज्ञान हो तो वैराग्य का या सम्यक्त्वादि का निमित्त होता है; परंतु भावना और प्रयत्न तो आत्मज्ञान का होता है, जातिस्मरण का नहीं।

जातिस्मरण तो भव को जानता है; वह मोक्ष का कारण नहीं होता। स्वानुभवज्ञान द्वारा आत्मा की स्वजाति को जानना, वह परमार्थ जातिस्मरण है, वह मोक्ष का कारण है।

❀ **प्रश्न :** दर्शनमोह की एक प्रकृति का नाम 'सम्यक्त्व प्रकृति' क्यों है ?

उत्तर : क्योंकि उसके उदय के साथ 'सम्यक्त्व' भी होता है, इसलिये सम्यक्त्व की सहचारिणी होने से उसका नाम 'सम्यक्त्व प्रकृति' रखा है। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के साथ उसका उदय होता है।

❀ **प्रश्न :** धर्म का मर्म क्या है ?

उत्तर : आत्मा अपने स्वभावसामर्थ्य से पूर्ण है और पर से अत्यंत भिन्न है;—ऐसी स्व-पर की भिन्नता जानकर, स्वद्रव्य के अनुभव से आत्मा शुद्धता को प्राप्त हो, वह धर्म का मर्म है।

अमरेली (सौराष्ट्र) में जिनेन्द्र भगवान की वेदी-प्रतिष्ठा का

मंगल-महोत्सव

अमेरली के मुमुक्षुओं की भावना से नगर के बीचोंबीच घंटाघर के सामने सुंदर जिनमंदिर का निर्माण हुआ और फाल्गुन शुक्ला 1 से 5 तक श्री शांतिनाथ भगवान आदि जिनबिंबों की प्रतिष्ठा का मंगल-उत्सव पूज्य गुरुदेव की मंगल-छाया में आनंद-उल्लासपूर्वक मनाया गया। फाल्गुन कृष्णा 14 के दिन श्री शांतिनाथ, पार्श्वनाथ तथा श्री नेमिनाथ भगवान की प्रतिमाएँ अमेरली लायी गईं और भक्त जनता ने हर्षोल्लासपूर्वक स्वागत किया।

फाल्गुन शुक्ला 1 को प्रातः काल पूज्य स्वामीजी लाठी से अमेरली नगर पधारे और भक्तों ने भवभीना हार्दिक स्वागत किया। शांतिनाथ-मंडप में श्री जिनेन्द्रदेव के दर्शन-पूजन के पश्चात् मंगल-प्रवचन में आनंदस्वरूप आत्मा का स्मरण करते हुए पूज्य स्वामीजी ने कहा कि—

जिसे जिसकी प्रीति हो, वह बारंबार उसका स्मरण करता है। कोई मंगल-उत्सव का प्रसंग हो, तब सगे-संबंधियों को याद करते हैं; उसीप्रकार यहाँ भगवान पधारने के मंगल-उत्सव में धर्मी जीव सबसे प्रिय ऐसे आनंदस्वरूप आत्मा को याद करते हैं। आत्मा को पहिचानकर बारंबार उसका स्मरण करना, सो मंगल है। धर्मी जीव कहता है कि हे परमात्मा! मेरे ज्ञान के आंगन में आप पधारो, आपके पदार्पण से हमारा आँगन पवित्र हुआ। इसप्रकार भगवान समान अपने आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में विराजमान करना, वह अपूर्व मंगल है—ऐसे अपूर्व मंगलपूर्वक भगवान की प्रतिष्ठा का उत्सव प्रारंभ होता है।

फाल्गुन शुक्ला दोज : आज सोनगढ़ में विराजमान सीमंधर भगवान की प्रतिष्ठा का वार्षिक दिन था; और अमरेली में सीमंधर प्रभु की मंगल-छाया में जिनेन्द्रभगवान की प्रतिष्ठाविधि का मंगल-प्रारंभ हुआ। प्रातःकाल श्री शशिभाई खारा ने प्रतिष्ठा-मंडप में श्री सीमंधर भगवान को विराजमान किया; तत्पश्चात् श्री मुकुन्दभाई खारा के सुहस्त से

ध्वजारोहण हुआ और श्री सवितावेन रसिकलाल की ओर से पंचपरमेष्ठी भगवान का पूजन-विधान हुआ। दोपहर को पूजन-विधान की समाप्ति पूर्वक श्री जिनेन्द्र अभिषेक हुआ।

फाल्गुन शुक्ला तीज के प्रातःकाल नांदीविधान हुआ; आनंद-अवसर के चिह्नरूप मंगल-कलश की स्थापना सौ. डॉक्टर तरलिकाबहिन के सुहस्त से हुई, तथा चार इन्द्र-इनद्राणी की स्थापना की गई। आचार्य-अनुज्ञा की विधि में भक्तों ने गुरुदेव के समक्ष अपनी भावना व्यक्त की कि—'हे गुरु! वीतरागी देव-गुरु-धर्म की प्रभावना तथा चंचल लक्ष्मी का मोह घटाने के हेतु हम श्री जिनेन्द्र भगवान का प्रतिष्ठा-महोत्सव करना चाहते हैं... इसलिये आप हमें आज्ञा दीजिये! ....इसप्रकार गुरुदेव के मंगल-आशीर्वादपूर्वक प्रतिष्ठा-महोत्सव प्रारंभ हुआ। इन्द्रों ने यागमंडल विधान द्वारा नौ देवों की (अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनालय, जिनबिम्ब, जिनवाणी एवं जिनधर्म) पूजा की।

फाल्गुन शुक्ला 4 को प्रातःकालीन प्रवचन के बाद इन्द्रों का जुलूस जिनपूजा हेतु निकला। साथ में 108 मंगल-कलशों सहित जलयात्रा का जुलूस भी था। भक्ति के उमंग भरे वातावरण में सब जिनमंदिर आये... जिनमंदिर भक्तों से भर गया था... कल तो इस जिनमंदिर में जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा होगी और धर्मात्मा भक्तिभाव से भगवान की पूजा करेंगे। सायंकाल इन्द्र-इन्द्राणी द्वारा जिनमंदिर की वेदी-कलश-ध्वज शुद्धि की विधि हुई थी; उनमें से कुछ मुख्य विधियाँ पूज्य बेनश्री-बेन के सुहस्त से हुई थीं। इस अवसर पर भक्तों के आनंद-उत्साह का पार नहीं था। अनेक वर्षों की भावना आज पूरी हुई, जिससे अमरेली के भक्तजन हर्ष एवं तृप्ति का अनुभव कर रहे थे। श्री जिनमंदिर-निर्माण एवं प्रतिष्ठा-महोत्सव के कार्य में मुख्य भाग श्री डॉक्टर प्रवीणभाई और उनका परिवार, कामाणी परिवार एवं खारा कुटुंब ने लिया था। श्री प्रवीणभाई डॉक्टर राजकोट में अच्छे सर्जन हैं और उनकी पत्नी श्री सौ. तरलिकाबहिन भी अच्छी डॉक्टर हैं। उन्होंने अपना बाजार-स्थित एक मकान जिनमंदिर निर्माण हेतु दे दिया था; उनकी भावना थी कि हमारे मकान की भूमि में जिनमंदिर का निर्माण हो, इससे अच्छा क्या होगा! अमेरली पूज्य श्री शांताबहिन का गाँव है, इसलिये उन्होंने भी जिनमंदिर के कार्यों में उल्लासपूर्वक मार्गदर्शन किया था और प्रेरणा दी थी।

सेठ श्री नरभेराम हंसराज कामाणी ने भी जिनमंदिर का शिलान्यास करके उसके निर्माण-कार्य में सहयोग दिया था। इसप्रकार गुरुदेव के प्रभावना-उदय से धर्मकार्य में चारों

ओर से अच्छा योग बन गया था। बाजार में चलते-चलते भगवान के दर्शन हों, ऐसी जिनमंदिर की रचना देखकर हर्ष होता है।

वेदीशुद्धि के पश्चात् भूमिका-शुद्धि हुई और फाल्गुन शुक्ला पंचमी के प्रात:काल श्री शांतिनाथ, श्री नेमिनाथ, श्री पार्श्वनाथ तथा विदेहीनाथ श्री सीमंधरनाथ भी वेदी में विराजमान हो गये। भक्तों के आनंदोल्लास का पार नहीं था, चारों ओर जय-जयकार की ध्वनि गूँज रही थी। गुरुदेव ने वेदी पर केशर का मंगल-स्वस्तिक किया और कलश, ध्वजा पर भी। एक ओर परम भक्ति भरे चित्त से गुरुदेव जिनेन्द्र भगवंतों की प्रतिष्ठा करा रहे थे, दूसरी ओर पूज्य बेनश्री-बेन परमभक्ति सहित जिनभगवंतों के स्वागत-गीत गवा रही थीं। मूलनायक श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा श्री नरभेराम हंसराज कामाणी की ओर से उनके सुपुत्र श्री प्रफुल्लभाई ने की थी; नेमिनाथ भगवान की प्रतिष्ठा श्री डॉ. प्रवीणचंद्र दिनकरराय दोशी ने की थी; पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिष्ठा पूज्य शांताबेन के भाई श्री मुकुन्दराय मणिलाल खारा ने की थी। जिनमंदिर पर कलश तथा ध्वजारोहण श्री मंगलजीभाई मूलजीभाई खारा तथा श्री लाभुबेन मोहनलाल सुंदरजी पारेख ने किया था। तदुपरांत श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव के चरणों की स्थापना भाई श्री गुणवंतराय कपूरचंद बोरा ने करायी थी और श्री समयसार-जिनवाणी की प्रतिष्ठा श्री नानचंदभाई खारा ने कराई थी। इसप्रकार अत्यंत हर्षोल्लासपूर्वक अमरेली में देव-शास्त्र-गुरु की मंगल-प्रतिष्ठा हुई और अमरेली के भक्त कृतकृत्य हो गये। प्रतिष्ठा-विधि जयपुर के श्री पंडित केशरलालजी ने करायी थी, वे बहुत दिनों से सोनगढ़ में रहकर पूज्य स्वामी के सत्संग का लाभ लेते हैं।

प्रतिष्ठा के पश्चात् गुरुदेव के साथ सबने जिनभगवंतों की पूजा की थी; बेनश्री-बेन ने आनंदसहित पूजा करायी थी। नूतन जिनमंदिर में पहली बार पूज्य स्वामीजी के साथ पूजा करते हुए भक्तों के हृदय आनंद से नाच रहे थे। शांतियज्ञ के पश्चात् उत्सव की पूर्णता के उपलक्ष में जिनेन्द्र भगवान की भव्य रथयात्रा निकाली गई थी। सोनगढ़ के रथ में चाँदी की गंधकुटी पर विराजमान सीमंधरभगवान को देखकर अमेरली की जनता हर्षाश्चर्य में डूब रही थी। जिनेन्द्रदेव के शासन की अद्भुत महिमा देखकर आनंद होता था।

भगवान की प्रतिष्ठा के हर्षोपलक्ष में आज विशाल प्रीतिभोज (नवकारशी) का

आयोजन किया गया था, जिसमें दिगम्बर, श्वेताम्बर, स्थानकवासी आदि सभी जैन सम्प्रदाय सम्मिलित हुए थे। पूज्य स्वामीजी ने पाँच दिन तक अमेरली में अपूर्व श्रुतामृत की धारा बहायी और महा महिमावान आत्मवस्तु का दर्शन कराया... कि जिसकी अनुभूति द्वारा भगवान बना जा सकता है। हे मुमुक्षुओं! जिनमार्ग में कहे हुए ऐसे अद्‌भुत आत्मतत्त्व को पहिचानने का यह अवसर है... ऐसे परमतत्त्व को प्रकाशित करते हुए पूज्य स्वामीजी अनेक नगरों और ग्रामों में विचर रहे हैं। तुम बहुमानपूर्वक श्रवण करके आत्मतत्त्व को लक्षगत करो।

[अमरेली का उत्सव पूर्ण होने पर फाल्गुन शुक्ला छठ के प्रातःकाल भगवान के दर्शन-भक्ति करके गुरुदेव ने अमरेली से मोटा आंकड़िया ग्राम की ओर प्रस्थान किया।—वही मोटा आंकड़िया जहाँ अट्ठाईस वर्ष पूर्व अपने इस प्रिय 'आत्मधर्म' का जन्म हुआ था।]

वस्तुस्वरूप की सच्ची दृष्टि से देखने पर प्रत्येक द्रव्य स्वयं अपने परिणाम की अखंडधारा में वर्त रहा है, इसलिये अन्य द्रव्य आत्मा को राग-द्वेष का उत्पादक किंचित् भी नहीं है। द्रव्य ही अपनी परिणामधारा में वर्त रहा है, वहाँ दूसरा कोई उसमें क्या करेगा? कुछ नहीं कर सकता—ऐसा वस्तुस्वरूप निश्चित है और इसीप्रकार वस्तु सिद्ध होती है अर्थात् वस्तुस्वरूप की सच्ची श्रद्धा होती है। इससे विपरीत माने तो वह वस्तुस्वरूप नहीं है।

वस्तु सत् है तो उसकी पर्याय उससे होगी या दूसरे से? क्या वस्तु के परिणाम-प्रवाह की धारा किसी से टूट सकती है? नहीं, तो फिर वस्तु के परिणाम को कोई दूसरा कैसे करेगा? किसी प्रकार नहीं कर सकता। मेरी पर्याय का कार्य मेरा द्रव्य करता है, अपनी निर्मल पर्याय की धारारूप से मैं ही परिणमित होता हूँ—ऐसा निर्णय करने पर स्वभाव-सन्मुख ही देखना रहा; और पर के साथ एकत्वबुद्धि की मिथ्या भ्रान्ति दूर हो गई। इसप्रकार वस्तुस्वरूप के निर्णय से मोक्षमार्ग का प्रारंभ होता है।

हे जीव! ऐसे चैतन्यस्वभाव का अनुभव कर —कि जिसमें किसी परभाव का प्रवेश नहीं है

[मोटा आंकडिया—जहाँ से 28 वर्ष पूर्व इस 'आत्मधर्म' मासिक पत्र का प्रकाशन प्रारंभ हुआ था, वहाँ—फाल्गुन शुक्ला छठ को दिया गया पूज्य स्वामीजी का प्रवचन—श्री समयसार कलश-11]

आत्मा का शुद्धस्वरूप बतलाकर आचार्यदेव कहते हैं कि—हे जगत के जीवो! भीतर तुम्हारा आत्मा ज्ञान-आनंदस्वरूप विद्यमान है, उसमें प्रवेश करके उसका सम्यक्‌रूप से अनुभव करो। यह जो शरीर दिखायी देता है, वह तो जड़-पुद्‌गल का पिण्ड है; रागादिभाव हैं, वे भी परभाव हैं, वे कहीं चैतन्य के भाव नहीं हैं; चैतन्य के स्वरूप में उन रागादि का प्रवेश नहीं है; रागादिभाव आत्मा में प्रतिष्ठा—शोभा नहीं पाते; आत्मा की शोभा उन रागादि द्वारा नहीं है; आत्मा की प्रतिष्ठा—शोभा तो चैतन्यस्वरूप में ही है। ऐसे आत्मा का तुम सम्यक् प्रकार से अनुभव करो!

भाई, तेरी सच्ची वसतु तो ऐसी चैतन्यमय है, उसके अनुभव द्वारा ही आनंद की प्राप्ति हो सकती है। राग का अनुभव कर-करके तू अनादि से दुःखी हो रहा है।—

कहे महात्मा, सुन आत्मा, कहूँ बात मैं बीतक सही;
संसार सागर दुःखभरे में अवतरित हुआ कर्म करी।

आत्मा को भूलकर तू इस दुःखभरे संसार में असह्य दुःख भोग रहा है। चैतन्यसुख को चूककर तू परवस्तु में सुख मानकर उसी में मोहित हो रहा है। भाई! अब इस संसार के दुःखों से छूटने के लिये तू आत्मा की पहिचान कर।

धर्मी जीव अपने आत्मा के अतिरिक्त संसार की अन्य कोई वस्तु नहीं माँगते। मेरा चैतन्यतत्त्व राग से पार है, उसका अनुभव करने पर चैतन्य में से अमृतरस झरता है... ऐसा तत्त्व ही मैं हूँ, अन्य कुछ मेरा नहीं है।

अहा, एकबार परभाव से भिन्न होकर तू अपने आत्मा का अनुभव तो कर देख! तू

कृतकृत्य हो जायेगा। अज्ञानभाव से अपनी चैतन्यवस्तु का ही अस्वीकार करके अज्ञानी जीव महान भावहिंसा करता है, वह भावमरण है। उससे छुड़ाने के लिये संत करुणापूर्वक कहते हैं कि—हे भाई! यह शरीर तो रजकणों से निर्मित है और यह राख होकर धूल में मिल जायेगा, यह तू नहीं है; तू तो अविनाशी चैतन्यतत्त्व है; तू इन्द्रियों से पार अतीन्द्रियस्वरूप है। अरे, अपनी महान लक्ष्मी को भूलकर तू रागादि और संयोगादि द्वारा बड़प्पन लेना चाहता है तो तू गरीब-भिखारी है। दूसरों के पास भीख कौन माँगता है ?....जो भिखारी हो वह। जो आत्मा अपने सुख के लिये परवस्तु की इच्छा करता है (—चाहे वह एक पैसा माँगता हो या करोड़ों रुपये चाहता हो), वह भिखारी है; और जो स्वयं अपने सुख-स्वभाव का अनुभव करता है, किसी भी परवस्तु की इच्छा नहीं करता, वह महान चैतन्यवैभव संपन्न महाराजा है।

मेरी चैतन्यवस्तु में राग भी नहीं है, वहाँ परवस्तु कैसी है ? मैं स्वयं ही भगवान जगत में सर्वश्रेष्ठ चैतन्यराजा हूँ। ऐसे सम्यक्स्वभावी आत्मा का अनुभव करो। अनंत जीव ऐसा अनुभव कर-करके मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं; इसलिये मुश्किल समझकर तू यह बात निकाल मत देना; कठिन लगे या सरल लगे, परंतु इस रीति और इस उपाय द्वारा आत्मा के सत्य स्वभाव का अनुभव करने से ही इस भवदु:ख का अंत आ सकता है; दूसरा तो कोई दु:ख से छूटने का उपाय नहीं है। शुभ-अशुभ जो भी उपाय करेगा, वे सब सुख के लिये व्यर्थ हैं; अनादि से वे सब करने पर भी किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, सच्चा उपाय उनसे भिन्न है। राग से भिन्न, राग का जिसमें प्रवेश नहीं है, राग द्वारा जो जाना नहीं जा सकता, जो अपने ज्ञानगम्य है—ऐसे आत्मा को जानकर उसका अनुभव करने पर तुझे महाआनंद होगा।

भाई, तू देख कि रागादि वृत्तियाँ तो बाह्योन्मुख होती हैं और ज्ञान का वेदन राग से भिन्न अंतर्मुख होता है। ऐसे ज्ञान का वेदन रागरहित हे। उसका अनुभव करके हे जीव! तू चैतन्य के आनंद में लीन हो। सांसारिक संकल्पों के जाल से बाहर निकलकर एक बार तो निर्विकल्प होकर अपने आनंदमय तत्त्व को देख! तेरे स्वसंवेदन में कोई परभाव नहीं आते। किसी राग की, किसी विकल्प की ऐसी शक्ति नहीं है कि तेरे चैतन्य के साथ एकमेक होकर रहे। वे विकल्प तेरे चैतन्यभाव से भिन्न के भिन्न बाहर ही रहते हैं। ऐसे चैतन्यस्वरूप तू है। राग का आधार कहीं तेरा चैतन्यतत्त्व नहीं है; तेरे चैतन्यतत्त्व के आधार से कहीं राग को-संसार की उत्पत्ति नहीं होती, चैतन्य-आधार से तो वीतरागी आनंद का अनुभव होता है। एक बार अंतर की गहराई में

उतरकर ऐसा अनुभव कर देख... तुझे मोक्ष का परमसुख अपने में ही दिखायी देगा।

❀ ❀ ❀

[गुरुदेव के मोटा आंकड़िया पधारते ही जैन-अजैन जनता ने उनका हार्दिक उल्लासपूर्वक स्वागत किया; जिनमंदिर भक्तों एवं दर्शनार्थियों की भीड़ से भर गया था। गुरुदेव के साथ सबने अत्यंत आनंदपूर्वक भगवान शांतिनाथ आदि भगवंतों के दर्शन-पूजन किये। पूज्य गुरुदेव के सुहस्त से स्वस्तिक कराके जिनमंदिर पर नई ध्वजा चढ़ाई गई। सायंकाल आंकड़िया से गिरनार पर्वत के दर्शन होते हैं... जो बड़ा ही सुहावना दृश्य है। फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को आंकड़िया के जिनमंदिर में विराजमान भगवान शांतिनाथ की प्रतिष्ठा को पच्चीसवाँ वर्ष प्रारंभ हुआ है।]

भगवान का संदेश

मुझे यह जो शुद्ध आत्मा के स्वसंवेदनपूर्वक अनुभूति हुई—वह मैं ही हूँ। पर्याय अंतरोन्मुख हुई और शुद्धस्वरूप का आनंदमय अनुभव हुआ वह मैं ही हूँ। उस अनुभूति से भिन्न आत्मा नहीं है। सम्यग्दर्शन ऐसे अनुभवपूर्वक होता है।

ऐसी अनुभूति करना, वह भगवान का संदेश है। ऐसी अनुभूति की, तब सच्चा आत्मा दृष्टि में-ज्ञान में-अनुभव में आया और उसने भगवान का सीधा संदेश सुना है। ऐसी अनुभूति के बिना आत्मा लक्षगत नहीं होता, और आत्मा लक्षगत हुए बिना भगवान के संदेश को समझ कैसे कहा जाये? जिसने आत्मा की ऐसी अनुभूति की, उसने भगवान के संदेश को, भगवान के उपदेश को, जिनशासन को जाना है।

ऐसी अनुभूति में जो गंभीर तत्त्व आया, वह मैं ही हूँ; अनंत गुण की शुद्धता के वेदन का समावेश उस अनुभूति में एकसाथ होता है। चैतन्यराजा अपने अनंत गुण के वैभवसहित स्वानुभूति में शोभायमान होता है।

शिष्य को आत्मा की अनुभूति के अतिरिक्त अन्य कोई अभिलाषा नहीं है। श्री गुरु ने ऐसा महान आत्मा बतलाया, उसकी अनुभूति कैसे हो, यह एक ही उत्कंठा है... और संत-मुनि उसे भगवान का संदेश सुनाते हैं।

बंदर और सिंह

सामने जो चित्र आप देख रहे हैं, इसके संबंध में बोध-कथाएँ लिख भेजने का आमंत्रण संपादक की ओर से पाठकों को दिया गया था। परिणामस्वरूप पाठकों ने अनेक छोटी-बड़ी कथाएँ लिखकर भेजी हैं। जो आत्मधर्म में क्रमशः दी जाएँगी। कथाएँ लिखकर भेजनेवालों को धन्यवाद!

(सम्पादक)

(1) मूर्ख सिंह और चालाक बंदर

आत्मा सिंह की भाँति शूरवीर है; परंतु वह अपने को भूलकर अज्ञान से कैसा दुःखी होता है—यह बात यह बोधचित्र हमें समझाता है।—

किसी जंगल में एक सिंह रहता था; उसे भूख लगने से वह खुराक की खोज में निकला। दोपहर था। एक वृक्ष पर बंदर बैठा था; जिसकी छाया नीचे जमीन पर पड़ रही थी। सिंह ने सोचा-मुझे अच्छा शिकार मिल गया और उसने बंदर की परछाईं पर झपट्टा मारा। तब डाल पर बैठे हुए बंदर ने कहा—अरे वन के राजा! मैं तो यहाँ डाल पर बैठा हूँ; उस परछाईं में कहीं मैं नहीं हूँ; परछाईं से तेरा पेट नहीं भरेगा; इसलिये व्यर्थ का श्रम मत कर! छाया पर झपट्टे मारने से तेरे हाथ में कुछ नहीं आयेगा।

उसीप्रकार जगत का राजा ऐसा यह चैतन्यसिंह आत्मा; इसे सुख की भूख लगी है; यह छाया जैसे बाह्य-विषयों में से सुख लेना चाहता है और उन विषयों में झपट्टे मार-मारकर दुःखी होता है। तब सूर्य-प्रकाश की भाँति जिनको ज्ञान-प्रकाश हुआ है, ऐसे संत उसे समझाते हैं कि अरे जीव! सुख तो तेरे आत्मा में है; परछाई जैसे शरीर में या विषयों में कहीं सुख नहीं है,

इसलिये तू बाह्य में सुख की खोज मत कर। बाह्य इन्द्रिय-विषयों में चाहे जितने झपट्टे मारने पर भी उनमें सुख नहीं मिलेगा।

इसप्रकार यह चित्र भेदज्ञान कराके सुख का सच्चा मार्ग बतलाता है।

❀ ❀ ❀

(2) चालाक सिंह और मूर्ख बंदर

[आपने अभी जो कथा पढ़ी, उसमें जो बंदर और सिंह थे, उनकी अपेक्षा इस दूसरी कथा में दूसरा बंदर और दूसरा सिंह है। पहली कथा में सिंह मूर्ख था और बंदर चालाक था, इस दूसरी कथा में बंदर मूर्ख और सिंह चालाक है। भेदज्ञानरूपी तात्पर्य तो दोनों कथाओं में से एक-सा निकलता है। यह कथा गुरुदेव के प्रवचन पर से लिखी है।]

किसी वृक्ष पर एक बंदर रहता था; वहाँ एक सिंह आया। सिंह को बंदर का शिकार करने की इच्छा हुई। ऊपर बैठा हुआ बंदर उसकी पकड़ में आना असंभव था; लेकिन सिंह बड़ा चालाक था; उसने देखा कि यह बंदर नीचे पड़ती हुई छाया को अपनी मान रहा है; इसलिये उसने बंदर के सामने देखकर जोर से गर्जना की और नीचे उसकी छाया पर पंजा मारा। छाया पर पंजा पड़ते ही बंदर तो भयभीत हो गया कि—अरे रे! सिंह ने मुझे पंजा मार!—और वह घबराकर नीचे गिरा! लेकिन उस मूर्ख को खबर नहीं है कि पंजा तो मेरी छाया को मारा है, मैं तो छाया से दूर (वृक्ष पर) सुरक्षित बैठा हूँ।—देखो, अज्ञान के कारण छाया को अपनी मानकर मूर्ख बंदर ने अपने प्राण गँवा दिये।

उसीप्रकार जीव की छाया जैसा यह जड़ शरीर, उसमें रोगादि होने से या मृत्युरूपी सिंह का पंजा पड़ने से बंदर की भाँति मूर्ख अज्ञानी जीव अपना ही मरण समझकर भयभीत होता है कि हाय! मैं मर गया, मुझे रोग हुआ... आदि।

परंतु भाई! वह सब तो शरीर में है, तुझमें नहीं है। तू शरीर से भिन्न अरूपी शाश्वत चैतन्यमूर्ति है; चैतन्य के ऊँचे वृक्ष पर तेरा आत्मा सुरक्षित है, तेरा चैतन्य जीवन अमर है, तुझे कोई मार नहीं सकता।—इसप्रकार यह चित्र ऐसा बोध देता है कि हे जीव! तू शरीर से भिन्न आत्मा को जानकर निर्भय हो! आत्मा का मरण ही नहीं है, फिर भय कैसा?

ज्ञानरस का मंथन

साधक के अंतर में ज्ञानरस का मंथन सदा चलता रहता है। ज्ञानरस, आत्मरस अर्थात् चैतन्यरस के आनंद का रस; उसमें राग का किंचित् स्पर्श नहीं है, राग के साथ उसका कोई संबंध नहीं है। ज्ञायकस्वभाव में ज्ञानपरिणति की एकता हुई और ज्ञानरस राग से भिन्नरूप स्वाद में आया, उस ज्ञान में केवलज्ञान आ गया, उसमें मोक्षमार्ग आ गया। स्वोन्मुख होकर आत्मा स्वयं ज्ञानरसरूप परिणमित हुआ, उसमें आत्मा का माप आ गया; अनंत गुणों के स्वाद का उसमें समावेश हो गया। उस ज्ञान की जाति द्वारा केवलज्ञान का तथा अखंड स्वभाव का निर्णय आ गया। उस निर्णय की शक्ति राग में-विकल्प में नहीं है। विकल्प के एक अंश का भी समावेश ज्ञानरस में नहीं होता। विकल्प को व्यवहार मानकर उसे जो आत्मानुभव का साधन बनाना चाहते हैं, वे बड़ी भूल में पड़े हैं। भाई! तेरे ज्ञान की जाति विकल्प से बिल्कुल भिन्न है; उसका भेदज्ञान करके राग से दूर हो तो ज्ञान द्वारा आत्मा की साधना हो। भाई! ज्ञान का अनुभव तो ज्ञान द्वारा ही होगा न!—कहीं राग द्वारा ज्ञान का अनुभव नहीं होता। जिसप्रकार जड़ और चेतन की जाति भिन्न है, उसीप्रकार राग और ज्ञान की जाति ही भिन्न है। राग से भिन्न मात्र चैतन्य के अतीन्द्रिय ज्ञानरस के मंथन में मोक्षमार्ग का समावेश है। अहा, ज्ञानरस का स्वाद अतीन्द्रिय आनंद से भरपूर है; आत्मा का ऐसा स्वाद आये, तब मोक्षमार्ग खुलता है और तभी जीव धर्मी होता है। ज्ञानरस के मंथन में परम अद्भुत शांति है।

[राजकोट में अंतर्मंथन में से निकले हुए पूज्य स्वामीजी के उद्गार]

आत्म-साधना की रीति

आत्मराजा की सेवा द्वारा ही आत्मा सधता है;
राग की सेवा द्वारा आत्मराजा प्रसन्न नहीं होता।

[राजकोट में पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों से]

(श्री समयसार गाथा 17-18)

आत्मा दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप है, वह 'राजा' है, अर्थात् स्वरूप की श्रेष्ठ लक्ष्मी से वह शोभायमान है; ऐसे चैतन्यराजा को पहिचानकर—उसकी श्रद्धा करके मोक्षार्थी जीव को उसकी सेवा करनी चाहिये।

जो जीव मोक्षार्थी है, उसकी यह बात है। मोक्षार्थी अर्थात् एक आत्मा का ही अर्थी, अन्य किसी का अर्थी नहीं। जो संसार का अर्थी है, वह मोक्ष का अर्थी नहीं है। जो राग का-पुण्य का-वैभव का अर्थी है, वह आत्मा का अर्थी नहीं है; जगत को अच्छा लगाने या जगत से बड़प्पन लेने का जो अर्थी है, वह आत्मा का अर्थी नहीं है। जो आत्मार्थी हुआ है, जिसे एक आत्मार्थ साधने का ही काम है, दूसरी कोई भावना नहीं है—ऐसा जीव अपने चिदानंदस्वरूप आत्मा को जानकर उसी का सेवन करता है। आत्मा का ही अर्थी होकर आत्मा का सेवन करने से अवश्य आत्मा के आनंद की प्राप्ति होती है।

जिन्हें अब संसार का विष उतार देना है और मोक्षसुख के अमृत का स्वाद चखना है, वे जीव स्वानुभूति द्वारा अपने शुद्ध आत्मा का सेवन करते हैं।

देखो, पहले से ही स्व-आत्मा का सेवन करने की बात कही है, पर की सेवा करने की बात नहीं की। पहले देव-गुरु-शास्त्र की सेवा से आत्मप्राप्ति होगी—ऐसा नहीं कहा। पहले से ही आत्मा को जानने की अर्थात् अनुभव करने की बात कही है। ऐसे आत्मा को जानना, उसका अनुभव करना ही देव-गुरु-शास्त्र की सेवा है, क्योंकि देव-गुरु-शास्त्रों ने आत्मा का अनुभव करना ही कहा है।

आत्मा को जानना—श्रद्धना-अनुभवना, तीनों एक साथ होते हैं, वह आत्मा का सेवन है। भाई, ऐसा मनुष्य भव पाकर अपने आत्मा का परम आनंद प्रगट करने के लिये तू अपनी पर्याय द्वारा अपने अखंड आत्मा का सेवन कर। उसकी सेवा करने से अनंत गुणों का निधान दे—ऐसा यह चैतन्यराजा है।

परवस्तु तो भिन्न है, इसलिये उसकी सेवा की बात नहीं ली, राग की सेवा तो अनादिकाल से कर-करके दु:खी हो रहा है; क्षणिक पर्याय का या गुण-भेद का सेवन करना नहीं कहा, क्योंकि उस भेद में संपूर्ण आत्मा अनुभव में नहीं आता; इसलिये भेद के विकल्पों से पार जो ज्ञानानंद एक स्वरूप, उसे ज्ञान में—श्रद्धा में लेकर अनुभवना ही चैतन्यराजा की सच्ची सेवा है, वही मोक्ष के लिये सच्ची आराधना है। अहा, आत्मा स्वयं संपूर्ण चैतन्यस्वरूप तो है ही; परंतु 'मैं ऐसा हूँ'—ऐसी अनुभूति उसने कभी नहीं की, इसलिये उसने ज्ञानस्वरूप आत्मा की सेवा कभी की ही नहीं। सत्समागम से बोधि प्राप्त करके, मोह-ग्रंथि तोड़कर जब सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट करे, तभी ज्ञानस्वरूप आत्मा की सच्ची सेवा होती है। ऐसे आत्मा की सेवा (ज्ञान, श्रद्धा, अनुभूति) के अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से मोक्ष की सिद्धि नहीं होती; इसलिये मोक्षार्थी जीवों को ऐसे आत्मा को पहिचानकर उसी का सेवन करना चाहिये।

यहाँ आत्मा को 'जानना' कहा, वह साधारण परलक्षी ज्ञातृत्व की बात कही है, परंतु अंतर के स्वानुभूति सहित ज्ञातृत्व की बात है। सचमुच तो जाना ही उसे कहा जाता है कि उसकी श्रद्धा करके अनुभव भी करे। अनुभूतिरहित ज्ञातृत्व वह सच्चा ज्ञातृत्व नहीं है।

भाई, यदि तुझे इस धधकते—जलते हुए संसार से बाहर निकलकर चैतन्य की अपूर्व शांति चाहिये तो तू आत्मार्थी बनकर आत्मा को अनुभव में ले। आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई इस कषाय की धधकती अग्नि से बचने का स्थान नहीं है। अज्ञान से जीव कषायाग्नि में जल रहा है। एकबार एक हलवाई की उबलती हुई कढाई में ऊपर से एक साँप गिरा और आधा जल गया... उस जलन की वेदना से छूटने के लिये एकदम उछला तो नीचे धधकती हुई भट्टी में जा पड़ा और मर गया! उसीप्रकार यह संसारी जीव अज्ञानवश मोहभ्रांति से दु:खी हो रहे हैं। तेल की कड़ाही में गिरे हुए सर्प की भाँति दु:ख में जल रहे हैं... उसे छूटना तो चाहते हैं, परंतु किसप्रकार दु:ख से छूटा जा सकेगा?—इसकी तो खबर नहीं है और अज्ञान से राग में-पुण्य में

सुख मानकर फिर संसार के दावानल में ही सुलगते रहते हैं। उन्हें छुड़ाने के लिये संत करुणा करके शांति का मार्ग बतलाते हैं।

भाई! इस संसार के घोर दु:खों से छूटने के लिये तू ज्ञान-आनंद के धाम ऐसे अपने आत्मा को पहिचानकर उसकी सेवा कर। उसे पहिचानते ही उसकी ओर दृष्टि करते ही ऐसे आनंद की स्फुरणा होगी कि विकल्पों का और दु:खों का इन्द्रजाल तुरंत लुप्त हो जायेगा। तुझे अपने आनंद का स्वराज्य चाहिये तो अपने चैतन्यराजा को ही अपना मत देना, अन्य किसी को मत नहीं देना। मत अर्थात् मति-बुद्धि; अपनी बुद्धि को अपने चैतन्यतत्त्व की परम महिमा में लगाना। अहा! मेरा चैतन्यतत्त्व ही सबसे उत्कृष्ट है, उससे बड़ा दूसरा कोई नहीं है कि जिसे मैं अपना मत दूँ। इसप्रकार धर्मी अपनी मति के मत को अपने स्वभाव में ही युक्त करता है, उसी का आदर-प्रेम-बहुमान करके अनुभव में लेता है।

अहा, मेरे चैतन्य के आनंद की स्फुरणा होते ही विकल्पों का जाल तत्क्षण लुप्त हो जाता है। चेतना जहाँ विकल्पों से अत्यंत भिन्न हो गई है—ऐसी चेतनास्वरूप आत्मा मैं हूँ—ऐसा धर्मी अपना अनुभव करता है।

सुखी होना हो, उसे क्या करना चाहिये? तो कहते हैं कि सर्व प्रथम वह आत्मा को जाने। '**मोक्षार्थिना प्रथमेव आत्मा ज्ञातव्य:....**' मोक्षार्थी को प्रथम ही आत्मा को जानना। जाना तभी कहा जाता है कि जिसे जानना है, उसके सन्मुख होकर उसका अनुभव करे। अतीन्द्रिय ज्ञान द्वारा ऐसा आत्मा ज्ञात होता है और उसे जानते ही अतीन्द्रिय आनंदसहित अनंतगुणों का शुद्धता का अनुभव होता है। अहा, ऐसे अनंत सामर्थ्य की खान तू स्वयं है! तू अपना ही सेवन कर। आत्मोन्मुख होकर ज्ञान-श्रद्धान-अनुचरणरूप सेवा करते-करते आत्मा स्वयं मोक्षरूप परिणमित होता है। इसीप्रकार साध्य की सिद्धि है; अन्य किसीप्रकार साध्य की सिद्धि नहीं है।

आत्मा के ज्ञानपूर्वक उसका श्रद्धान और आचरण होता है। जाने बिना श्रद्धा किसकी? और स्थिर कहाँ होना? आत्मा को जानने पर ज्ञाता-ज्ञेय का विकल्प भी नहीं रहता, ज्ञान तो विकल्प से भी पार है। ज्ञान और श्रद्धा तथा उस काल निर्विकल्प अनुभूति—यह सब एक साथ ही है। प्रथम आत्मा को जानना और फिर उसकी श्रद्धा करना—ऐसा कहकर ज्ञान-श्रद्धा का कालभेद नहीं बतलाना है परंतु ज्ञानपूर्वक श्रद्धा बतलाना है। चैतन्य की जैसी अनंत-अचिंत्य

महिमा है, वैसी ज्ञान में बराबर लेकर उसकी श्रद्धा होती है; इसलिये कहा है कि प्रथम जानकर उसकी श्रद्धा करना। ऐसे ज्ञान-श्रद्धानपूर्वक ही आत्मा निःशंकरूप से अपने स्वरूप में स्थित होता है और शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है।

आत्मा का पूर्णस्वरूप जहाँ ज्ञान में आया, वहीं उसकी श्रद्धा हो जाती है कि—'यह मैं!'—इसप्रकार स्वसंवेदनपूर्वक ज्ञान और श्रद्धा एक साथ ही प्रगट होते हैं। इसका नाम आत्मा की सेवा है।—ऐसी सेवा द्वारा चैतन्यराजा प्रसन्न होता है अर्थात् मोक्ष साधता है।

जो आत्मा का अर्थी हुआ है, उस जीव को सीधा ही आत्मा का अनुभव करना कहा है। पहले निर्णय करना और फिर अनुभव करना—ऐसे दो भेद नहीं लिये। सत्य आत्मा का ज्ञान, निर्णय और अनुभव एक साथ ही है। चैतन्यानुभूति ही आत्मा है। चैतन्यरूप से जो सदा सबको अनुभव में आता है, उस चैतन्यस्वरूप ही आत्मा है। 'यह चैतन्य... चैतन्य...' इसप्रकार चैतन्यभावरूप से जो अनुभव में आता है, वही मैं हूँ;—इसप्रकार चैतन्यस्वरूप आत्मा को जानकर उसकी श्रद्धा करना और निःशंकता से चैतन्यरूप ही अपने को अनुभवना, वह आत्मराजा के सेवन की रीति है। ऐसी सेवा द्वारा मोक्ष की सिद्धि होती है।

चैतन्यभाव रागादि से पृथक् अनुभव में आया कि 'ऐसा चैतन्यभाव मैं'—वह निर्विकल्प स्वसंवेदन ज्ञान से अनुभव हुआ है; यह मोक्ष को साधने की अपूर्व कला है। यह तो उस मोक्षार्थी जीव की बात है जो अनुभव में लिये तैयार हुआ है। महा मोक्षसुख—जो अनंत काल तक बना रहे, उसका उपाय भी अलौकिक ही होता है; वह ऐसा नहीं होता कि साधारण शुभराग के भाव से प्राप्त हो जाये। आत्मा का जैसा महान स्वरूप है, वैसा ही ज्ञान में आये, तभी वह सधता है। जितना महान है, उतना महान न मानकर किंचित् भी न्यून माने, उसे रागवाला-पर के साथ संबंधवाला माने तो सच्चा आत्मा उसके ज्ञान में नहीं आ सकता, ज्ञान के बिना उसकी सच्ची श्रद्धा भी नहीं हो सकती और वस्तु का ज्ञान-श्रद्धान किये बिना उसमें स्थित रहनेरूप आचरण भी नहीं हो सकता।—इसप्रकार आत्मा को जाने बिना साध्य की सिद्धि नहीं होती।

चैतन्यस्वरूप वह आत्मा का अबाध्य स्वरूप है; उसे आत्मा में से कम नहीं किया जा सकता। दूसरा सब कुछ आत्मा में से निकाला जा सकता है; शरीर-मन-वाणी-देव-गुरु-शास्त्र-राग के विकल्प आदि सबको निकाल देने पर भी उनके बिना आत्मा स्थित रह सकता

है, परंतु चैतन्यभाव के बिना आत्मा नहीं रह सकता;—इसप्रकार सबको निकाल देने पर अंत में जो चैतन्यभावरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ;—ऐसा अनुभव करना, वह आत्मप्राप्ति की रीति है। आत्मा ऐसी वस्तु है कि यह चैतन्यरूप से ही अनुभव में आता है, अन्य किसी भाव से अनुभवना चाहे तो आत्मा अनुभव में नहीं आ सकता।

भाई, यह तो मोक्ष के द्वार में प्रवेश करने की बात है; चैतन्य महाराज से मिलने की बात है।—मैं कोई चाकर या भिखारी नहीं हूँ, परंतु मैं स्वयं चैतन्यराजा हूँ;—इसप्रकार राजा होकर स्वयं अपना सेवन करने की बात है। अरे, आत्मा का अनुभव करने के लिये राग की मदद माँगना कहीं चैतन्य को शोभा देता है ? मुझे किसी की मदद चाहिये, मुझे राग की आवश्यकता है, इसप्रकार जो दीनता करता है, वह तो कायर है; ऐसे कायर जीव आत्मराजा से भेंट नहीं कर सकते, उसका अनुभव नहीं कर सकते। यह तो शूरवीरों का काम है; वीतराग का मार्ग ही शूरवीरों का है। मुझे अपने आत्मअनुभव में पर का आश्रय है ही नहीं; विकल्प का आश्रय मुझे नहीं है; स्वाधीनरूप से अपनी चेतना द्वारा ही मैं अपने आत्मा का अनुभव करता हूँ—ऐसे अनुभव द्वारा मोक्ष के द्वार में प्रवेश होता है।

अनुभूति होने पर प्रतीति हुई कि 'यह चैतन्यस्वरूप आत्मा मैं हूँ', पर्याय में ज्ञान, राग आदि अनेक भाव मिश्र हैं, परंतु उसमें विवेकबुद्धि द्वारा अर्थात् भेदज्ञान की अत्यंत सूक्ष्मता द्वारा अन्य सर्वभावों को भिन्न करके जो यह मात्र चैतन्यस्वरूप परम शांत तत्त्व अनुभव में आता है, वही मैं हूँ—ऐसा आत्मज्ञान होता है; ऐसे आत्मज्ञान में जो आत्मा ज्ञात हुआ, वही मैं हूँ—ऐसी निःशंक श्रद्धा होती है; ऐसे ज्ञान और श्रद्धापूर्वक आत्मा में स्थिर होने पर आत्मा की सिद्धि होती है।

अपने आत्मा का ऐसा अनुभव करना, वह कोई असंभव नहीं है, वह संभव है, हो सकता है और वही हमें करना है।—ऐसी स्वीकृतिपूर्वक चैतन्यस्वरूप आत्मा का अनुभव हो सकता है। धर्मी को ऐसा अनुभव हुआ है; पहले भी आत्मा तो ऐसी अनुभूतिस्वरूप ही था, कहीं परभावरूप नहीं हुआ था, परंतु अज्ञानदशा में अपने को रागादिभावरूप ही मानकर उसी की सेवा करता था, राग से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की सेवा एक क्षण भी नहीं की थी; अब परभावों से भिन्न चैतन्यस्वरूप आत्मा की सेवा की... जिससे उसे साध्य आत्मा की सिद्धि हुई,

मोक्षमार्ग प्रगट हुआ। वह जानता है कि अहा! अब हम चैतन्यस्वरूप ही हैं; उसे जानकर अब सततरूप से अनंत चैतन्य-चिह्नरूप ही हम अपना अनुभव कर रहे हैं। चैतन्यस्वरूप आत्मा की ऐसी अनुभूति से उच्च अन्य कोई नहीं है। ऐसी अनुभूति द्वारा हमें अपने साध्य आत्मा की सिद्धि हुई है। अन्य किसी उपाय द्वारा साध्य आत्मा की सिद्धि नहीं होती।

राग में जिसे एकत्वबुद्धि है, वह राग से पृथक् होकर चैतन्य में स्थिर होने की शक्ति कहाँ से लायेगा? अभी जो राग से भिन्न चैतन्य को नहीं जानता, वह उसे साधेगा कहाँ से? आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है; आबाल-वृद्ध सभी जीव ज्ञानस्वरूप ही हैं, भगवान आत्मा तो स्वयं सदा ज्ञानरूप ही अनुभव में आता है; परंतु 'यह जो ज्ञान है, सो मैं हूँ'—ऐसा वे नहीं जानते और अपने को रागादि भावों के साथ एकमेक अनुभव करते हैं, इसलिये वे जीव राग से भिन्न ऐसे साध्य आत्मा को नहीं साध सकते। परभावों से भिन्न, चेतनास्वरूप आत्मा का अनुभव, वही आत्मा को साधने की रीति है।

शोधकण—

आचार्यकल्प पंडितप्रवर स्व. श्री टोडरमलजी के विषय में कुछ नया प्रकाश

अलीगंज (एटा-उ.प्र.) से श्री गंभीरचंद्र जैन वैद्य अपने 25-3-72 के पत्र द्वारा सूचित करते हैं कि—यहाँ के प्राचीन ग्रंथ-भंडार में 'चर्चासंग्रह' नामक हस्तलिखित पोथी है; उसके लेखक पंडित के सहाध्यायी श्री पंडित ब्रह्मचारी राजमलजी ने स्पष्ट लिखा है कि—पंडितजी की उम्र ४७ वर्ष की थी। हमने आधार की नकल मँगवाई थी जो निम्नानुसार है:—

आगे गोमट्टसारजी में पाँच बात का मुख्य कथन है, ताका नाम 1 बंधक, 2 बंधीमान, 3 बंधस्वामी, 4 बंधहेतु, 5 बंधभेद—यह पाँचों सिद्धांत के अर्थ हैं याहीसैं याका नाम पंचसंग्रह

है। अर गोमट्टसार नाम है, सो गोमट्टस्वामीजी जो आदिनाथ का नाम है, ताका चैत्यालय विषें ग्रंथ का अवतार भया, तातें द्वितीय नाम गोमट्टसार दिया है। यह गोमट्टसारजी धवल शास्त्रजी के अनुसार तथा महाकर्म प्रकृति प्राभृत है नाम जाका ऐसा आग्राइणी पूर्व का पाँचवाँ वस्तुनाम अधिकार ताके अनुसार बना है और धवल शास्त्रजी का कर्ता जितभुतवलि आचार्य है। बहुरि यह गोमट्टसारजी गंगवंश में उपज्या राजमल महाराजा ताका नाम मंत्री चामुण्डराय ताका प्रश्नका निमित्त पाय याका अवतार भया है। सो नेमिचंद्र आचार्य तो मूल प्राकृत गाथा 1500 में अर्थ समूह धर्‌या और ता पीछें ताकी टीका कर्णाटी भाषामय राजा चामुण्डराय बनाई ताके अनुसार संस्कृत टीका 18000 केशव वर्णी क्षुल्लक बनाई ताके अनुसार ढूँढाडदेश विषें सवाई जयपुर नगर ता विष तेरापंथका देहरा विषें पुन्यवान श्रेष्ठी अव्रत सम्यग्दृष्टि न्याय व्याकरण छन्द अलंकार गणित आदि शास्त्र के पारगामी विशेष तत्त्वज्ञानी आत्मअनुभवी बड़े अध्यात्मी लब्धिसारजी क्षपणासारजी सहित गोमट्टसारजी इन तीनों की टीका हजार इक्यावन (51000) *गुवालेरी भाषामय वचनिका, ऊपर गाथा, नीचे वाकी संस्कृत टीका के अनुसार भाषा टीका बनाई, ताका नाम सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका है, ताकी महिमा वचन अगोचर है। जो कोई जिनधर्म की महिमा अरु केवलज्ञान की महिमा जाणी चाहौ तौ या सिद्धान्त का अनुभवन करौ। घणी कहिवा करि कहा। बहुरि बारह हजार त्रिलोकसारजीकी टीका—वा बारह हजार मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ अनेक शास्त्रों के अनुसार उस आत्मानुशासनजी की टीका हजार तीन, इन तीनों ग्रंथों की टीका भी टोडरमल्लजी सैंतालीस बरस की आयु पूर्ण करि परलोक विषें गमन की।

नोट — ग्रंथ की अंतिम पंक्तियाँ इसप्रकार हैं—

चरचा संग्रह ग्रंथ की टीका करी सुजान।
एकादश हजार है द्वै सै ऊपर मान॥
(1200) (श्लोक)

संवत 1854 मार्गमासे शुक्लपक्षे पंचम्याँ रविवासरे लिख्यतं उजागरदास श्री अलीगंज मध्ये लिखी।

—०००—

[नोट- आचार्यकल्प पंडितप्रवर श्री टोडरमलजी की उम्र ४७ वर्ष की थी; ऐसा उल्लेख श्री महावीरजी के शास्त्र-भंडार में 'आत्मानुशासन' पोथी से मिला था।

आजकल श्री पंडित हुकमचंदजी शास्त्री एम.ए. श्री पंडित टोडरमलजी के साहित्य एवं उनकी सर्वोत्तम साधना पर एक विस्तृत शोध-निबन्ध (थीसिस) लिख रहे हैं; किंतु पंडितजी का गुप्त संग्रहरूप साहित्य जो करीब 15 वर्ष का लिखा हुआ अति महत्त्वपूर्ण होगा उसका पता लगाकर प्रकाश में लाना अति आवश्यक है। —संपादक]

* यहाँ गुवालेरी का अर्थ ग्वालियर की भाषा से है – ऐसी प्रतीत होती है।

विविध समाचार

पूज्य स्वामीजी के विहार का कार्यक्रम

पूज्य स्वामीजी का मंगल-विहार सौराष्ट्र-गुजरात के विभिन्न नगरों में निश्चित कार्यक्रम के अनुसार हो रहा है। सौराष्ट्र का विहार पूरा करके पूज्य स्वामीजी तारीख 8 अप्रैल के प्रात:काल अहमदाबाद पधारे, जहाँ उनका भावभीना स्वागत हुआ। 6 दिन तक अहमदाबाद में अध्यात्म-वर्षा करके स्वामीजी तारीख 14 अप्रैल के प्रात:काल पालेज नगर में पधारे और दो दिन रहे। तारीख 16 के प्रात: पालेज से पुन: 1 दिन के लिये अहमदाबाद पधारे। पूज्य स्वामीजी के विहार का शेष कार्यक्रम निम्नानुसार है।—

दहेगाम (गुजरात)	तारीख 17-18अप्रैल
रखियाल (गुजरात)	तारीख 19-20 अप्रैल
तलोद (गुजरात)	तारीख 21-22 अप्रैल

सोनासण (गुजरात)	तारीख 23 अप्रैल
झींझवा (गुजरात)	तारीख 24 अप्रैल
हिम्मतनगर (गुजरात)	तारीख 25-26अप्रैल
नवा (गुजरात)	तारीख 27 अप्रैल
चोरीवाड (गुजरात)	तारीख 28-29 अप्रैल
रणासण (गुजरात)	तारीख 30 अप्रैल से 01 मई तक
फतेपुर (गुजरात)	तारीख 02 मई से 16 मई तक

(द्वितीय वैशाख कृष्णा 4 से द्वितीय वैशाख शुक्ला 4 तक)

वैशाख शुक्ला 3 को पंचकल्याणक-महोत्सव की पूर्णाहुति के पश्चात् वेदी-प्रतिष्ठा और वैशाख शुक्ला 2 तारीख 14-15 को पूज्य श्री कानजीस्वामी की 84 वीं जयंती मनायी जायेगी।

बामणवाडा (गुजरात) तारीख 17-18 मई (वैशाख शुक्ला 4 को रामपुर में तथा वैशाख शुक्ला 6को बामणवाडा में वेदी-प्रतिष्ठा)

उदयपुर (राजस्थान)	तारीख 19 मई से 22 मई (स्वाध्यायभवन का उद्‌घाटन)
कुरावड़ (राजस्थान)	तारीख 23-24 मई (स्वाध्यायभवन का उद्‌घाटन)
मंदसौर (मध्यप्रदेश)	तारीख 25 से 28मई तक
प्रतापगढ़ (राजस्थान)	तारीख 29 मई से 01 जून तक
रतलाम (मध्यप्रदेश)	तारीख 2-3 जून
इन्दौर (मध्यप्रदेश)	तारीख 4 से 7 जून तक
बम्बई (महाराष्ट्र)	तारीख 08 जून
भावनगर (सौराष्ट्र)	तारीख 09 जून से 12 जून तक

सोनगढ़—आगमन तारीख 13 जून मंगलवार

भोपाल (म.प्र.) में भ० महावीर जयन्ती समारोह सम्पन्न

मुख्यमंत्री एवं राज्यपाल द्वारा संबोधन

दिनांक 27 मार्च को भोपाल नगर में जैनधर्म के 24वें तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्मदिवस विशेष समारोहपूर्वक मनाया गया।

प्रात: 5 बजे प्रभात फेरी एवं 6 बजे विशाल जुलूस निकाला गया, तथा दोपहर में 3 बजे भगवान का अभिषेक एवं मुनिश्री जयसागरजी द्वारा महावीरस्वामी के जीवन और उनके सिद्धांतों पर प्रकाश डाला गया। रात्रि को चौक बाजार में विशाल आम सभा का आयोजन श्री नन्नूमलजी जैन की अध्यक्षता में हुआ, जिसमें म.प्र. राज्यपाल श्री सत्यनारायण सिंहजी ने भगवान महावीर के शाश्वत् सिद्धांतों की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए उन्हें अपने जीवन में अपनाने की प्रेरणा दी।

आपने कहा कि क्षत्रिय कुल में उत्पन्न होने के कारण मैं भी अपने को भगवान महावीर का वंशज मानते हुए गर्व का अनुभव करता हूँ। भगवान महावीर का जन्म भी क्षत्रिय कुल में हुआ था।

उस सभा में उपस्थित विशाल जन–समुदाय को संबोधित करते हुए मुख्यमंत्री श्री प्रकाशचंद्र सेठी ने कहा कि भगवान महावीर ने तात्त्विक यथार्थता–स्वतंत्रता–वीतरागता, अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकांत के जिन महान सिद्धांतों को आज से 2500 वर्ष पूर्व उद्घाटित किया था, वे शाश्वत्, चिरंतन सिद्धांत हैं और आज भी हमारे लिये महान उपयोगी हैं। भगवान महावीर ने जिस अपरिग्रह व्रत को स्वेच्छा से अपनाने की प्रेरणा की थी, आज समाज में व्याप्त भीषण आर्थिक असमानता को दूर करने के लिये मजबूतर होकर शासन को उसी अपरिग्रह को अपनाने के लिये परिग्रह अर्थात् संपत्ति की सीमा निर्धारण का कानून बनाना पड़ रहा है।

वास्तव में अनेकांत और स्याद्वाद भगवान महावीर की एक विलक्षण देन है, जिसको अपनाकर ही विश्व में शांति की स्थापना की जा सकती है। मैं जो समझता हूँ और जो कहता हूँ वही एकमात्र सत्य है, मनुष्य का यही दुराग्रह परस्पर मतभेदों और हिंसक संघर्षों को जन्म देता है। अतएव अनेकांत की दृष्टियों द्वारा ही उक्त मतभेदों और संघर्षों का निराकरण कर विश्व में शांति स्थापित की जा सकती है।

जैन-दर्शन के विद्वान आदरणीय श्री पंडित जगन्मोहनलालजी शास्त्री ने ऐतिहासिक दृष्टि से भगवान महावीर के समकालीन राजनैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण पर सुंदर विवेचन करते हुए उनके कल्याणकारी सिद्धांतों पर विशद रूप में प्रकाश डाला। आपने कहा कि हिंसा, अधर्म और दुःख की उत्पत्ति अपने अंतर में ही होती है। इसलिये अहिंसा, धर्म और सुख-शांति के लिये हमें अपने अंतरंग को ही टटोलना चाहिये। तभी सच्चे अर्थों में सुख-शांति को प्राप्त किया जा सकता है।

भवदीय,
डालचंद सर्राफ, मंत्री

❀ ❀ ❀

विदिशा में आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर
एवं
श्री वीतरागविज्ञान स्वाध्यायमंदिर का भव्य शिलान्यास समारोह

दिनांक 19-3-72 से 28-3-72 तक दस दिवसीय प्रौढ़ शिक्षण, दशलक्षण धर्म विधान एवं दिनांक 26-3-72 को श्री पूज्य पंडित बाबूभाई चुन्नीलाल महेता फतेपुर की अध्यक्षता में श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्यायमंदिर का शिलान्यास समारोह बड़े हर्ष-उल्लास के वातावरण में सफलतापूर्वक सानंद सम्पन्न हुआ।

विदिशा एक ऐतिहासिक नगरी है। यहाँ भगवान शीतलनाथ स्वामी के गर्भ, जन्म, तथा तप तीन कल्याणक हुए हैं। वर्तमान में भी यहाँ 6000 जैन निवास करते हैं, 550 करीब जैन घर हैं। सामूहिक स्वाध्याय की विशिष्ट परम्परा यहाँ करीब 12 वर्ष से अविरल चल रही है। एक विशाल स्वाध्यायमंदिर का शिलान्यास कुछ समय पूर्व अनवरत अध्यात्मरस का आस्वादन करनेवाले, अपनी दिव्यदेशना द्वारा भारतीय जनमानस को जिनशासन की ओर आकृष्ट करनेवाले युग-पुरुष, मंगलमूर्ति अध्यात्मवेत्ता पूज्य श्री कानजीस्वामी के कर-कमलों द्वारा हुआ था। इस एक मंजिल स्वाध्याय भवन को शीघ्र ही दो मंजिल बनाने की योजना है, समाज बड़ा होने से और यहाँ से बड़ा मंदिर काफी दूर होने से एक और स्वाध्यायमंदिर की आवश्यकता काफी समय से अनुभव की जा रही थी, जिसकी रूपरेखा श्री वीतरागविज्ञान

मित्र-मंडल के तत्त्वावधान में आयोजित दिनांक 13-2-72 की बैठक में बनी और उसी दिन 24000) चौबीस हजार रुपयों की राशि स्वाध्याय मंदिर के निर्माण हेतु एकत्रित हुई, उदारमना तत्त्वप्रेमी श्रीमान् सेठ मिश्रीलाल मुन्नालाल (जवाहरलाल) बड़कुल परिवार ने 11111) की राशि प्रदान कर अपनी दानशीलता और तत्त्वप्रेम का अनूठा परिचय दिया, इस बैठक की अध्यक्षता मध्यप्रदेश मुमुक्षु मंडल के मंत्री श्री सेठ डालचंदजी सर्राफ भोपाल ने की, आप 7-8 भाईयों के साथ पधारे थे। श्री डालचंदजी आदि का भी उल्लेखनीय सहयोग हमें प्राप्त हुआ।

दिनांक 19-3-72 को श्री अध्यात्मरसिक, तत्त्वचिंतक श्री युगलकिशोरजी 'युगल' (कोटा) प्रातः यहाँ पधारे। लगातार 10 दिन तक दोनों समय आपके सारगर्भित प्रवचनों ने जन-मानस को मुग्ध कर दिया, विशेषकर पढ़ा-लिखा समाज आपके चिंतन-प्रधान गंभीर विषयों को भी सरल ढ़ंग से अनूठी शैली और भावनुवर्तनी साहित्यिक भाषा से अत्यंत प्रभावित रहा और दिन-प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या बढ़ती ही रही। प्रातःकालीन प्रवचन 8 से 9 तक निमित्त-उपादान तथा क्रमबद्धपर्याय, केवलज्ञान मीमांसा तथा रात्रि में 8 से 9 तक निश्चय-व्यवहार एवं कर्ता-कर्म मीमांसा पर हुये।

दोपहर 1 से 3 बजे तक प्रतिदिन पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा के तत्त्वावधान में श्री दशलक्षण धर्म विधान होता था, जिसमें दश धर्मों की व्याख्या बहुत रोचक ढंग से चिंतन के आधार पर अनूठे ढंग से प्रस्तुत की और लोगों को सही दृष्टिकोण समझने के लिये नवीन दिशा दी। लोगों ने अपने-अपने उपादान के अनुसार समझा और समझने का प्रयास किया। रात्रि में 7 से 8तक स्थानीय संगीत मंडली द्वारा नृत्यों के साथ जिनेन्द्र भक्ति का कार्यक्रम रखा, जिसमें आबाल-वृद्ध भक्ति में मग्न होकर झूमने लगते थे। दिनांक 25-3-72 की संध्या को श्री पंडित बाबूभाईजी फतेपुर से विदिशा पधारे जिनकी गाजे-बाजे के साथ हजारों जन-समूह ने अगवानी की, रात्रि में श्री भाईजी का ओजस्वी आध्यात्म-रसगर्भित प्रवचन हुआ। दिनांक 26-3-72 को प्रातः 8 से 9 तक रंग, राग और भेद से भी भिन्न निज तत्त्व क्या है, इस पर सरस प्रभावक प्रवचन होने के बाद श्री वीतराग विज्ञान स्वाध्यायमंदिर किला अंदर विदिशा का शिलान्यास समारोह श्री पंडित बाबूभाई फतेपुर की अध्यक्षता में एवं श्री युगलजी कोटा, व पंडित रतनचंदजी शास्त्री विदिशा व ज्ञानचंदजी विदिशा, ब्रह्मचारी बाबूलालजी बरायठा आदि

हजारों मुमुक्षु भाई-बहनों की उपस्थिति में श्रीमान मिश्रीलाल, मुन्नालाल, जवाहरलाल, गुलाबचंद बढ़कुल परिवार विदिशा ने शिलान्यास किया। श्री पंडित धन्नालालजी ग्वालियर ने इसे विधिवत् सानंद सम्पन्न कराया। इस मंगलमय अवसर पर आगरा से सेठ पद्मचंदजी सर्राफ, भोपाल से डालचंदजी व पंडित राजमलजी, श्री कोमलचंदजी गोधा जयपुर, ललितपुर श्री हजारीलालजी टडैया, अशोकनगर से श्री सुमेरचंदजी, चौ. ताराचंदजी आदि तथा ग्वालियर से प्रेमचंदजी आदि अनेक स्थानों से गणमान्य मुमुक्षु भाई अपने अनेक साथियों के साथ पधारे थे, जिनके द्वारा शिलान्यास एक अपूर्व उत्साह और धर्म का वातावरण मुखरित हो उठा। सब मिलाकर करीब 46000) हजार का योगदान श्री वीतरागविज्ञान स्वाध्यायमंदिर के निर्माण हेतु दानस्वरूप प्राप्त हुआ। इसी पुनीत प्रसंग में माधवगंज स्थित जिनमंदिर में श्री पूज्य बाबूभाईजी के कर-कमलों द्वारा श्री नंदीश्वर द्वीप की रचना का मुहूर्त किया गया एवं पंडित धन्नालालजी के द्वारा वेदी के शिखर पर कलशारोहण हुआ, सेठ पद्मचंदजी सर्राफ आगरावालों के द्वारा राजस्थान के कलाकारों द्वारा बनाये गये चमत्कारिक ढंग से पूज्य श्री कानजीस्वामी के अगणित प्रतिबिम्ब एवं भगवान बाहुबली स्वामी के अगणित प्रतिबिम्बों का अनावरण किया गया। श्री पंडित राजमलजी बी.कॉम. भोपाल द्वारा जैन पुरातत्त्व संग्राहलय का अनावरण किया गया, इसी अवसर पर दिनांक 27-3-72 को प्रात: 9 से 11 तक श्री सन्मति जैन सार्वजनिक वाचनालय का उद्घाटन श्री युगलजी कोटा द्वारा जैनधर्मशाला माधोगंज में हुआ। दिनांक 27-3-72 के रात्रि को 8 से 12 तक बड़े बाजार के विशाल प्रांगण में हजारों जन-समूह के बीच भगवान महावीर की जन्म-जयंति के उपलक्ष में श्री जिलाध्यक्ष की अध्यक्षता में आम सभा का आयोजन सफलतापूर्वक सानंद सम्पन्न हुआ। श्री युगलजी ने भगवान महावीर के अहिंसा, अनेकांत एवं अपरिग्रहवाद के सिद्धांतों पर प्रकाश डाला, पश्चात् पंडित ज्ञानचंदजी आदि अनेक वक्ताओं के संक्षिप्त सारगर्भित भाषण हुये।

अंत में श्री युगलजी तथा पंडित धन्नालालजी ग्वालियरवालों का सार्वजनिक सन्मान करते हुये श्री बाबू नंदकिशोरजी एडवोकेट एवं श्री कपूरचंदजी सतभैया ने अभिनंदन-पत्र पढ़े और जिलाध्यक्ष महोदय के कर-कमलों द्वारा सादर समर्पित किये गये।

अभिनंदन का उत्तर देते हुये श्री युगलजी एवं पंडित धन्नालालजी ने भावुक हृदय से

अपने यह उद्‌गार प्रगट किये कि वास्तव में अभिनंदन के पात्र तो वे पूज्य गुरुदेव ही हैं, जिन्होंने हमें यह तत्त्वदर्शन कराया, उनका ही हम पामर प्राणियों पर अनंत उपकार है। अत: यह अभिनन्दन हमारा नहीं, उनका ही है, हम तो मात्र उनके संदेश–वाहक हैं।

दिनांक 28–3–72 को विधान एवं शिविर की समाप्ती के बाद विद्वानों की विदाई के अवसर पर विदिशा समाज की ओर से श्री सेठ राजेन्द्रकुमारजी की अध्यक्षता में समाज के मंत्री श्री कपूरचंदजी सतभैया एवं विधानकर्ता श्री शिखरचंदजी ने तथा संयोजक श्री पंडित ज्ञानचंदजी ने सर्वप्रथम परम पूज्य स्वामीजी का परम उपकार मानते हुये बाहर से पधारे हुये विद्वानों, त्यागियों, एवं समाज के कार्य–कर्ताओं का तथा बाहर से पधारे हुये सैकड़ों मुमुक्षु भाई–बहनों का आभार माना और सबको सहयोग के लिये धन्यवाद दिया।

इन संपूर्ण कार्यक्रमों को सफल बनाने का श्रेय इस कार्य के संयोजक हमारे श्री पंडित ज्ञानचंदजी को है, जिन्होंने अपने अथक परिश्रम, प्रेरणा, अदम्य उत्साह, एवं सच्ची लगन से इस कार्य को सम्पन्न होने में अपना तन, मन, धन से योग दिया है और मूल में इस आयोजन के प्रेरक भी एकमात्र पंडित ज्ञानचंदजी रहे। अत: आप विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

दिनांक 31–3–72 —रतनचंद शास्त्री, एम.ए.

माधोगंज, विदिशा।

❀ ❀ ❀

आध्यात्मिक प्रवचन

ग्वालियर स्थान माधोगंज चितेरा ओली में श्री दिगम्बर जैन तेरह पंथी मंदिरजी के स्वाध्यायभवन में श्रीमान् पंडित रमेशभाई मलकापुरवाले एवं श्रीमान् पंडित राजमलजी सा. भोपाल के प्रात: व रात्रि दोनों समय आध्यात्मिक प्रवचन मधुर भाषा में एवं टेपरिकार्डों द्वारा नियमित होते थे। जैन समाज के धर्मप्रेमी बन्धुगणों को इनसे बहुत लाभ प्राप्त हुआ है। श्रीमान् पंडित रमेशभाई मलकापुरवाले दिनांक 26–2–72 को अष्टाह्निका पर्व में सोनागिरजी पधारे थे। सोनागिरजी में यात्रीगणों को इनसे तत्त्वज्ञान का अच्छा लाभ प्राप्त हुआ। आप बड़ी ही सुंदर एवं सरल भाषा में श्रोताओं को समझाते हैं। —चंपालाल जैन

श्री जैन सेवा संघ हैदराबाद के तत्त्वावधान में
भगवान महावीर जयंती का भव्य समारोह

[तारीख 23-3-72 से 26-3-72 तक]

भगवान महावीरस्वामी की 2500 वीं निर्वाण शताब्दी के लिए अभी दो वर्ष बाकी हैं। इस निर्वाण शताब्दी को भव्य दिव्य तथा व्यापकरूप से मनाया जा सके, इस दृष्टि से प्रयत्न करना आवश्यक है—ऐसा सोचकर, श्री जैन सेवा संघ हैदराबाद की ओर से गत साल से भगवान महावीर की जयन्ती को व्यापक प्रमाण में मनाया जा रहा है। गत साल इसके लिए आठ दिन का कार्यक्रम रखा गया था। जिसमें 1. जैन चित्रकला प्रदर्शनी, 2. जैन सिद्धांत तथा अन्य धर्मों के विचारों में समन्वयात्मक दृष्टि से विचार गोष्ठी, 3. कवि सम्मेलन, 4. शोभायात्रा तथा जाहिर सभा आदि कार्यक्रम रखे गये थे और हजारों लोगों ने इन कार्यक्रमों में भाग लेकर अपने को धन्य माना था।

गत साल की भाँति इस वर्ष भी श्री भगवान महावीर की जयंती 23-3-72 से 27-3-72 तक भव्य रीति से मनाई गई। —श्री जैन सेवा संघ, हैदराबाद

❀ ❀ ❀

आत्मधर्म के ग्राहकों से निवेदन

आपका प्रिय मासिक पत्र 'आत्मधर्म' द्वितीय वैशाख माह से 28वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। पिछले दिनों कागज आदि के भाव में वृद्धि हो जाने के कारण नये वर्ष का चंदा 4) चार रुपये रखा गया है; यद्यपि इससे ग्राहकों को कष्ट होगा, किंतु विवश होकर हमें यह वृद्धि करना पड़ी है। कई ग्राहक बंधु अब भी 3) तीन रुपये का मनीआर्डर कर रहे हैं, जिससे व्यवस्था में असुविधा होती है और हमें मनीआर्डर वापिस भेजने को बाध्य होना पड़ता है; इसलिये 4) का ही मनीऑर्डर करें।

यदि आप पुराने ग्राहक हैं तो कृपया, अपना पूरा पता तथा ग्राहक नंबर स्पष्ट अक्षरों में लिखें ताकि व्यवस्था में सुविधा रहे। आशा है हमें आपका पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा।

गत मास हिन्दी अनुवाद समय पर न हो पाने से अंक प्रकाशित नहीं हो सका था; इससे

पाठकों को जो असुविधा हुई, उसका हमें खेद है। पिछले अंक की पूर्ति हमने इस अंक में अधिक पृष्ठ छापकर की है।

मैनेजर,
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

❀ ❀ ❀

सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी में

आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानंद सम्पन्न

दिनांक 29 फरवरी से 4 मार्च तक का जैन शिक्षण-शिविर अपूर्व सफलता के साथ सम्पन्न हुआ, विद्वानों में श्री कनुभाई दाहोद, पंडित श्री धन्नालालजी, श्री नेमीचंदजी पाटनी (आगरा), श्री डालचंदजी भोपाल, श्री जवाहरलालजी विदिशा, श्री ज्ञानचंदजी विदिशा आदि ने भाग लिया। शिविर का उद्घाटन आगरा निवासी श्री पद्मचंदजी जैन ने किया। बैंडबाजे, अपार जनसमुदाय सहित यह समारोह पहाड़ पर गया, वहाँ श्री कनुभाई द्वारा ध्वजारोहण हुआ। यह जुलूस वहाँ से तलहटी में निर्मित पंडाल में पहुँचा। लोगों ने शिविर की सफलता हेतु मंगलकामना व्यक्त की। प्रतिदिन प्रातः 5 बजे से पंडित ज्ञानचंदजी द्वारा लघु जैनसिद्धांत प्रवेशिका का कार्यक्रम चलता था; शीत ऋतु का प्रकोप होने पर भी 500 से अधिक संख्या में जिज्ञासुगण एकत्रित हो जाते थे, समूह पूजन के पश्चात् श्री समयसार नाटक पर प्रवचन; दोपहर को छहढाला के माध्यम से ज्ञानचंदजी द्वारा सात तत्त्व की भूल और सम्यग्ज्ञान शिक्षण पद्धति से समझाते थे, श्रोतागण बहुत प्रसन्न होते थे। हमेशा रथयात्राओं में भजन-कीर्तनादि तथा इन्द्रों द्वारा चौक में कलशाभिषेक होते थे।

सोनागिर पहाड़ पर बड़े उल्लास से भक्ति का कार्यक्रम होता था, जो देखते ही बनता था। लोगों का कहना था कि ऐसा कार्यक्रम हमने यहाँ आजतक नहीं देखा। रात्रि को एक घंटा रत्नकरण्डश्रावकाचार पर तीन दिन तक श्री कनुभाई द्वारा तथा दो दिन विदिशा निवासी श्री ज्ञानचंदजी द्वारा प्रवचन हुआ जो कि म.प्र. में शिक्षण-शिविर आदि के प्रचारमंत्री हैं। शंका-समाधान में श्री नेमीचंदजी पाटनीजी रहते थे। एक विशाल धर्मशाला का शिलान्यास श्री पद्मचंदजी (आगरा) द्वारा हुआ; मंडल के सदस्यों ने कमरा बनवाने की स्वीकृति दी।

सोनगढ़ से प्रकाशित पुस्तकों को आधे मूल्य में बिक्री की तथा 200 से अधिक आत्मधर्म मासिक-पत्र के ग्राहक बनाये। हजारों की संख्या में ग्रंथ बिके। मुमुक्षु मंडल द्वारा जैन सिद्धांत प्रवेशिका बरैयाजी कृत तथा जैनतीर्थ दर्पण पुस्तकें नि:शुल्क वितरित की गईं। वार्षिक मेले पर आयोजित शिक्षण-शिविर आजतक की परंपरा में अपूर्व था। हजारों व्यक्तियों ने मुक्त कंठ से सराहना की और हर साल ऐसा आयोजन का आग्रह किया। अधिकांश लोगों ने नियमित स्वाध्याय करने का नियम लिया। तीर्थक्षेत्रों पर मेलों के समय ऐसी शैली से जैन-शिक्षण और धर्म-प्रचार की आवश्यकता है—ऐसा सभी ने कहा।

ग्वालियर के मुमुक्षु मंडल में तत्त्वज्ञान सहित धर्म-प्रभावना के कार्य में उत्साह बढ़ता रहा है। प्रतिमास 2-3 विद्वानों का समागम होता है। प्रतिदिन तथा रात्रि को 2 घंटा प्रवचन, जैन-शिक्षण व स्वाध्याय नियमित चलता है; काफी संख्या में रुचि सहित अध्ययन कर रहे हैं। आमंत्रित 11 विद्वानों का तीन मास में लाभ लिया।

—श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल, चितेरा ओली माधवगंज, ग्वालियर

अलवर (राज०)—समाज के विशेष आमंत्रण पर पंडित श्री धन्नालालजी ग्वालियर पधारे थे। पाँच दिन का समय दिया। प्रतिदिन चार घंटे के कार्यक्रम में जैनसिद्धांत प्रवेशिका, प्रवचन, छहढाला तथा रात्रि को आध्यात्मिक प्रवचन होता था। समाज ने बड़े उत्साह-प्रेम से तत्त्वजिज्ञासा पूर्वक सुना। पूज्य स्वामीजी का आभार प्रगट करते हुए कहा कि—हम श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट के पूज्य स्वामीजी के एवं पंडित श्री धन्नालालजी के आभारी हैं।

—कमलचंद जैन, मंत्री

पूज्य स्वामीजी के प्रवचनों के टेपरिकार्डों द्वारा धर्म-प्रचार

ब्रह्मचारी पंडित श्री रमेशचंदजी (मलकापुरवाले) जो श्री नवनीतभाई सी. जवेरी (अध्यक्ष—श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट सोनगढ़) की ओर से धर्म-प्रचार का कार्य करते हैं, वे आमंत्रण मिलने पर नये-नये स्थानों पर जाते हैं। गत श्रावण सुदी 15 से प्रचारार्थ घूम रहे हैं। आगरा, एत्मादपुर, जसवंतनगर, इटावा, भरतपुर, गुना, लश्कर, ग्वालियर, बीना बजरिया, भिंड तथा आगरा के निकटस्थ अनेक नगरों में उत्तम प्रचार किया है। एत्मादपुर और आगरा में दो बार गये, वहाँ के जिज्ञासुओं ने अच्छा लाभ लिया है। धन्यवाद!

नये प्रकाशन

श्री समयसारजी शास्त्र (चतुर्थावृत्ति)—यह भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवकृत सर्वोत्तम शास्त्र है जो अद्वितीय जगत्‌चक्षु ग्रंथाधिराज है। पृष्ठ संख्या 650; मूल्य : साढ़े सात रुप्ये या, लागत से बहुत कम है। पोस्टेजादि अलग।

(नोट—यह शास्त्र जयपुर, बम्बई, कलकत्ता, भोपाल, इंदौर, सागर, विदिशा, आगरा, उदयपुर, नागपुर आदि नगरों में मुमुक्षु मंडल द्वारा भी प्राप्त हो सकेगा।)

श्री समयसार-प्रवचन (भाग-1) (द्वितीयावृत्ति)—गाथा 1 से 12 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। पृष्ठ संख्या 480, मूल्य 4.50।

श्री समयसार-प्रवचन (भाग-2) (द्वितीयावृत्ति)—गाथा 13 से 33 पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन। पृष्ठ संख्या 510, मूल्य 4.50।

भेदविज्ञानसार (द्वितीयावृत्ति)—श्री समयसारजी के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार गाथा 390 से 404 पर पूज्य स्वामीजी के भाववाही प्रवचन। पृष्ठ संख्या 275, मूल्य मात्र-2.00।

हित की बात—(संपादक—श्री जमुभाई रवाणी, प्रकाशक-ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला, सोनगढ़)जेबी साइज। पृष्ठ संख्या 116, मूल्य 0.35 पै.

श्री निमयसार-पद्यानुवाद :—(द्वितीयावृत्ति) अनुवादक : श्री 'युगलजी' एम.ए. कोटा। पृष्ठसंख्या 42, मूल्य 0.30 पैसे। (यह प्रकाशन ब्रह्मचारी दुलीचंदजी ग्रंथमाला का है।)

श्री समयसार-पद्यानुवाद :—(चतुर्थावृत्ति) अनुवादक : श्री नेमीचंद पाटनी। पृष्ठसंख्या 98, मूल्य 0.50 पैसे। (यह प्रकाशन भी उपरोक्त ग्रंथमाला का है।)

जैन सिद्धान्त प्रवेशिका (9 वीं आवृत्ति) पृष्ठ 104, मूल्य 0.30 पैसे (इस पुस्तक की माँग बहुत है और शीघ्र बिक जाती है, इसलिये जिन्हें आवश्यकता हो शीघ्र मँगवा लेवें।)

सत्तास्वरूप : (श्री पंडित भागचंदजी छाजेड़ कृत) साथ में श्री पंडित गुमानीरामजी कृत 'समाधिस्वरूप' और श्री पंडित टोडरमलजी कृत 'गोम्मटसार की प्रस्तावना' दी गई है। पृष्ठ संख्या 120, डेमी साइज, मूल्य मात्र 1.00

निम्नोक्त पुस्तकें छप रही हैं:—

1–'श्री मोक्षशास्त्र' (बड़ी टीका, श्री रामजीभाई मा. दोशी कृत); द्वितीयावृत्ति।

2–'श्री छहढाला' (सचित्र) छटवीं आवृत्ति;

3–'अनुभवप्रकाश';

4–'मूल में भूल' (श्री कानजीस्वामी के प्रवचन);

5–'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' (श्री अमृतचन्द्राचार्य कृत, भाषा टीकाकार पडित प्रवर श्री टोडरमलजी);

6–सम्यग्दर्शन (भाग–1)

पता —

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

स्व० कविवर दीपचंदजी शाह कृत

ज्ञानदर्पण

[अंक 320 से आगे]

बहिरात्मा कथन

मुनिलिंग धारि महाव्रत कौ सधैया भयौ, आप बिनु पाए बहु कीनी सुभ करणी।
यतिक्रिया साधिकै समाधिकौ न जानै भेद, मूढमति कहै मोक्षपद की वितरणी।
करम की चेतना मैं शुभउपयोग रीति, यह विपरीति ताहि कहै भवतरणी।
ऐसे तौ अनादिकी अनंत रीति गहि आयौ, क्रिया नहि पाई ज्ञानभूमि अनुसरणी ॥33॥

शुभ उपयोगसेती जैसे पुण्यबंध होय, पात्र को ही दान दिये भोगभूमि पाइये।
सतसंगसेती जैसे हितकौ स्वरूप सधै, स्थिरता के आये जैसैं ज्ञानकौं बढाइये।
ग्रहवास त्याग सो उदासभाव किये होय, भेदज्ञान भावमैं प्रतीति आप भाइये।
कारणसैं कारज की सिद्धि है अनादि ही की, आतमीक ज्ञानसैं अनंतसुख पाइये ॥34॥

जामैं पर वेदना उछेदना भई है महा, वेदै निज आत्मपद परम प्रकासतौ।
अनाकुल आत्मीक अतुल अतेंद्री सुख, अमल अनूप करै सुखकौं विलासतौ।
महिमा अपार जाकी कहाँ लौं बखानै कोय, जाही के प्रभाव देव चिदानंद भासतौ।
निश्चय निहारिकै स्वरूपमैं सम्भारि देख्यौ, स्वसंवेदन ज्ञान है हमारो रूप सासतौ ॥35॥

परम अनंत गुण चेतना को पुंज महा, वेदतु है जाके बल ऐसौ गुणगान है।
सासतौ अखंड एक द्रव्य सो तौ, ताहीकरि सधै यामैं और न *विवान है।
जाही के स्वभाव सैं अनंत सुख पाइयतु, जाहीकरि जान्यौ जाय देव भगवान है।
महिमा अनंत जाकी ज्ञानही मैं भासतु है, स्वसंवेदन ज्ञान सोही पद निरवान है ॥36॥

*विवान = ढीलापन अथवा विधान।

ATAMDHARMA Regd. No. G. 108

आत्मा का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

1	समयसार	(प्रेस में)
2	प्रवचनसार	4.00
3	समयसार कलश–टीका	2.75
4	पंचास्तिकाय–संग्रह	3.50
5	नियमसार	4.00
6	समयसार प्रवचन (भाग–1)	4.50
7	समयसार प्रवचन (भाग–2)	4.50
8	समयसार प्रवचन (भाग–4)	4.00
9	मुक्ति का मार्ग	0.50
10	चिद्विलास	1.50
11	जैन बालपोथी (भाग–1)	0.25
12	जैन बालपोथी (भाग–2)	0.40
13	समयसार पद्यानुवाद	0.25
14	नियमसार (हरिगीत)	0.25
15	द्रव्यसंग्रह	0.85
16	छहढाला (सचित्र)	1.00
17	अध्यात्म–संदेश	1.50
18	श्रावक धर्म प्रकाश	2.00
19	लघु जैनसिद्धान्त प्रवेशिका	0.25
20	दशलक्षण धर्म	0.75
21	मोक्षमार्गप्रकाशक	2.50
22	मोक्षमार्गप्रकाशक (7वाँ अध्याय)	0.50
23	ज्ञानस्वभाव और ज्ञेयस्वभाव	3.00
24	मंगल तीर्थयात्रा (सचित्र गुज०)	6.00
25	हितपद संग्रह (भाग–2)	0.75
26	सत्तास्वरूप (श्री गोम्मटसार की प्रस्तावना एवं समाधिमरण स्वरूप सहित)	1.10
27	अष्ट–प्रवचन (भाग–1)	1.50
28	अष्ट–प्रवचन (भाग–2)	1.50
29	अध्यात्मवाणी	1.00
30	अमृतवाणी	1.10
31	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–1	0.75
32	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–2	1.10
33	जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग–3	0.50
34	बालबोध पाठमाला, भाग–1	0.40
35	बालबोध पाठमाला, भाग–2	0.50
36	बालबोध पाठमाला, भाग–3	0.55
37	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–1	0.55
38	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–2	0.75
39	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग–3	0.75
	छह पुस्तकों का कुल मूल्य	3.30
40	वीतरागविज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका	2.25
41	खानिया तत्त्वचर्चा (भाग–1)	8.00
42	" " (भाग–2)	8.00

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

प्रकाशक : श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)
मुद्रक : मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)